मूल्य: ₹50 नवंबर–दिसंबर 2025 आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप ICAR

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

फल फूल

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

इस अंक में

- गुणों से भरपूर लायन्स मेन मशरूम
- सफेद और पीली ग्लैडियोलस किस्मों का उत्पादन
- मचान विधि से सब्जी उत्पादन
- औषधीय पादप गुग्गुल का संरक्षण

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

बहु-फसली सब्जियों की खेती से भरपूर लाभ

खेती-किसानी आज केवल फसल उत्पादन तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह आजीविका और स्थायी आय का ऐसा साधन बन चुकी है जिसमें नवाचार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भूमिका अहम है। परंपरागत एकल फसली खेती अक्सर किसानों को लाभ के बजाय जोखिम और नुकसान की ओर ले जाती है। ऐसे समय में जब जलवायु परिवर्तन, आदान लागतों में वृद्धि और बाजार की अनिश्चितता जैसी चुनौतियाँ सामने हों, तब किसानों के लिए बहु-फसली प्रणाली एक बेहतर समाधान बन सकती है। इसी दिशा में पंजाब के मानसा जिले के किसान श्री मंजीत सिंह ने एक सफल प्रयोग करके दिखाया है। श्री सिंह ने अपनी जमीन पर लो टनल तकनीक का इस्तेमाल करते हुए लौकी में मटर और पत्ता गोभी की अंतरफसल अपनाई है। इस मिश्रित खेती से किसान को न केवल उच्च उत्पादन और अधिक लाभ मिलता है, बल्कि एकल फसल के जोखिम भी कम हो जाते हैं।

खेती को अधिक लाभकारी और टिकाऊ बनाने के लिए आधुनिक समय में कई उन्नत तकनीकें अपनाई जा रही हैं। इनमें से एक प्रमुख तकनीक है लो टनल खेती। लो टनल पद्धति में खेत में लोहे, बांस या पीवीसी पाइप के मेहराबनुमा ढाँचे बनाकर उन पर पारदर्शी प्लास्टिक शीट या पॉलीथीन चढ़ा दी जाती है। यह संरचना लगभग 2-3 फीट ऊँची होती है और इसके भीतर सब्जियों की शुरुआती अवस्था में खेती की जाती है।

इससे पौधों को ठंड, पाले, तेज हवा और कीटों से सुरक्षा मिलती है। लो टनल में सब्जियों की वृद्धि तेज होती है और किसानों को ऑफ-सीजन सब्जियाँ जल्दी बाजार में बेचने का अवसर मिलता है। इससे न केवल पैदावार बढ़ती है बल्कि फसल का दाम भी अधिक मिलता है।

पंजाब के जिला मानसा के गाँव बुरझरियन निवासी श्री मंजीत सिंह (आयु 41 वर्ष) पिछले 30 वर्षों से खेती कर रहे हैं। खेती के प्रति गहरा लगाव और प्रयोगधर्मी सोच उन्हें लगातार नए प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती रही है। इन्होंने लो टनल तकनीक को अपनाकर एक बहु फसली सब्जी उत्पादन प्रणाली विकसित की, जिसमें वे लौकी, मटर और पत्ता गोभी की अंतरफसल उगाते हैं।

इससे किसानों को न केवल एकल फसल की तुलना में अधिक उत्पादन और लाभ मिलता है, बल्कि जोखिम भी घटता है। खरपतवार की समस्या कम हो जाती है और कीट एवं रोग प्रबंधन आसान हो जाता है।

बुआई और सिंचाई

- तीनों फसलें नवम्बर के दूसरे पखवाड़े में बोई जाती हैं।
- सबसे पहले लौकी और मटर की बुआई तैयार खेत में होती है और सिंचाई की जाती है।
- इसके एक सप्ताह बाद लौकी के पौधे प्रत्यारोपित किए जाते हैं।
- सिंचाई और देखभाल की प्रक्रिया संतुलित रूप से अपनाई जाती है ताकि सभी फसलों को आवश्यक नमी और पोषण मिल सके।

फसल कटाई का अनुक्रम

इस मॉडल में फसलों की कटाई अलग-अलग समय पर होती है, जिससे पूरे सीजन में नियमित आमदनी होती रहती है।

- **पत्ता गोभी:** जनवरी के अंत से कटाई शुरू होती है और फरवरी तक पूरी हो जाती है।
- **मटर:** लगभग 20 फरवरी से तुड़ाई शुरू होती है और 20 मार्च तक चलती है।
- **लौकी:** मार्च से जून तक लगातार तुड़ाई होती रहती है।

उत्पादन और लाभ

इस प्रणाली से प्राप्त उत्पादन इस प्रकार है-

- **मटर:** 70-75 क्विंटल प्रति हैक्टर
- **पत्ता गोभी:** 160-180 ग्राम प्रति पौधा
- **लौकी:** 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टर

इन तीनों का सम्मिलित आर्थिक मूल्य किसानों को एकल फसल की तुलना में कई गुना अधिक लाभ पहुँचाता है। औसतन प्रति एकड़ लगभग 2 लाख रुपये शुद्ध लाभ होता है।

लाभ

- एक ही भूमि और लगभग समान लागत में तीन फसलें।
- खरपतवार की समस्या लगभग शून्य।
- पूरे सीजन में नियमित आमदनी।
- बाजार जोखिम और मौसम की मार से सुरक्षा।
- आय का स्थायित्व और पोषण विविधता।

फायदेमंद है लो टनल तकनीक

विस्तार और संभावनाएँ

श्री मंजीत सिंह का मॉडल राज्यभर के सब्जी उत्पादक किसानों के लिए एक सफल उदाहरण है। यदि इसे बड़े पैमाने पर अपनाया जाए, तो सब्जी उत्पादन, किसानों की आय और ग्रामीण रोजगार-तीनों में वृद्धि होगी।

वैज्ञानिक पुष्टिकरण

इस मॉडल को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा प्रभावकारिता परीक्षण और मानकीकरण आवश्यक है। साथ ही, मशीनरी और यांत्रिकीकरण को इस प्रणाली के अनुरूप ढालने की भी जरूरत है, ताकि श्रम लागत घटे और यह तकनीक व्यापक किसानों तक पहुँच सके।

लो टनल तकनीक ने किसानों को मौसम की प्रतिकूलता से बचाने और ऑफ-सीजन सब्जियाँ उगाने का बेहतर अवसर दिया है। श्री मंजीत सिंह ने इसे अपनाकर बहु-फसली खेती का एक व्यावहारिक और लाभकारी मॉडल प्रस्तुत किया है। यह मॉडल दर्शाता है कि यदि किसान पारंपरिक खेती के साथ वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाएँ, तो सीमित संसाधनों से भी अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है। ■

(स्रोत: विकसित कृषि संकल्प अभियान)

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी

वर्ष: 46, अंक: 6, नवंबर-दिसंबर 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डॉ. एस के सिंह** **अध्यक्ष**
   उपमहानिदेशक (बागवानी)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
2. **डॉ. अनुराधा अग्रवाल** **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
3. **डॉ. टी दामोदरन** **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ
4. **डॉ. जगदीश राणे** **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान
5. **डॉ. मारकंडे सिंह** **सदस्य**
   विभागाध्यक्ष
   पुष्प विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, नई दिल्ली
6. **प्रो. राजेश्वर सिंह चंदेल** **सदस्य**
   कुलपति
   डॉ. वाई एस परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौनी, हिमाचल प्रदेश
7. **श्री शरद पांडे** **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री कंवल सिंह चौहान** **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिंदी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल

संपादक
सुनीता अरोड़ा

संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 250.00
विशेषांक : रु. 200.00
E-mail : phalphul@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय सूची

निदेशक की कलम से

बागवानी फसलों से अधिक मुनाफा – **अनुराधा अग्रवाल**

रोजगार
शुष्क पुष्पों से महकता भविष्य 4
शुभम राय

सेहत
प्राकृतिक एंटीबायोटिक्स से पोषण एवं औषधीय समृद्धि 7
भावना अस्नानी

अल्पदोहित
पोषण सुरक्षा के लिए विंग्ड बीन की खेती 9
निहारिका सिंह, डी. के. उपाध्याय, सी. एन. राम **और** सुमन पूनिया

औषधीय
गुणों से भरपूर लायन्स मेन मशरूम 13
धर्मेश गुप्ता, दीक्षा शर्मा, अरूनेश कुमार **और** देवजीत शर्मा

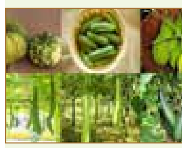
लाभकारी
मचान विधि से सब्जी उत्पादन 14
रिया मिश्रा **और** माखन सिंह कराड़ा

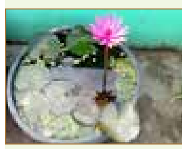
सजावटी
आकर्षक पुष्प नील कमल 16
प्रतिभा आनंद, लोकेन्द्र सिंह **और** माम चन्द सिंह

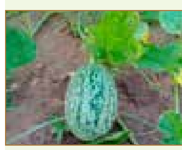
पौष्टिक
शुष्क एवं मरुस्थलीय क्षेत्रों की पोषक सब्जी काचरी 18
धनेश्वरी आर्य, प्रकाश सिंगाठिया, बलराज सिंह **और** शैली पुरोहित

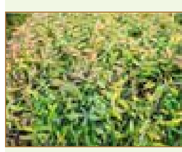
बहुउपयोगी
नीलगिरी का सफल उत्पादन 21
पूजा किशोर

गुणकारी
फालसा का मूल्य संवर्धन 24
आकांक्षा सिंह, वी के सिंह, अंगद प्रसाद **और** शशांक सिंह

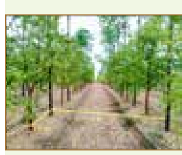
प्रणाली
अर्धशुष्क क्षेत्र में चंदन आधारित कृषिवानिकी 26
संग्राम चव्हाण, गौरी रावले, वनिता सालुंखे, विजयसिंह काकडे **और** अमृत मोराडे

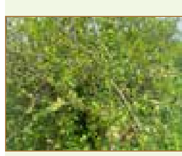
मूल्यवान
औषधीय पादप गुग्गुल का संरक्षण 29
स्वराज्य लक्ष्मी नायक, मनीष कुमार सुथार, मनीष कुमार मित्तल, गणेश खड़के **और** रोहन सरकार

विषय सूची

31

विकल्प

पैशन फ्रूट की लाभकारी खेती

नेहा धीमान, इंद्र देव, राजेश्वर सिंह चंदेल **और** जया चौधरी

व्यावसायिक 33

सफेद और पीली ग्लैडियोलस किस्मों का उत्पादन

एडिगा अमला, किशन स्वरूप, कंवर पाल सिंह, पांचाल संगमेश **और** पैडी रोशनी

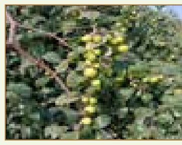

विधि 37

बेर की वैज्ञानिक खेती

उत्तम शिवरान, पुष्पा उज्जैनिया, एम आर चौधरी **और** कमलेश कुमार यादव

39

आजीविका

मशरूम की खेती से ग्रामीण युवाओं का सशक्तिकरण

रूप सिंह, इरफान खान **और** अरविन्द नागर

41

प्रभावी

सर्दी की सब्जियों में रोग एवं कीटों का समेकित प्रबंधन

तेजेंद्र कुमार, अनुपम **और** डोली सैनी

जानकारी 44

नवंबर-दिसंबर में बागों की करें विशेष देखभाल

हरे कृष्ण, अरविंद कुमार सिंह, जयदीप हालदार, शुभम कुमार तिवारी **और** अनूप प्रताप सिंह

आवरण-II

नवाचार

बहु-फसली सब्जियों की खेती से भरपूर लाभ

आवरण-III

सार-समाचार

- **प्रदूषण से बचाव करे फलों का सेवन**
- **वन की आग से बढ़ रहा जल प्रदूषण**

निदेशक की कलम से

बागवानी फसलों से अधिक मुनाफा

भारत में कृषि के क्षेत्र में बागवानी फसलों का महत्व तेजी से बढ़ रहा है, क्योंकि ये फसलें न केवल उच्च उत्पादकता को बढ़ाती हैं, बल्कि किसानों को बेहतर आमदनी भी प्रदान करती हैं। पारंपरिक फसलों जैसे धान, गेहूं और गन्ने की अपेक्षा बागवानी फसलें अधिक लाभकारी हो सकती हैं क्योंकि इनकी माँग बाजार में लगातार बनी रहती है। इन फसलों में मुख्य रूप से फल, फूल और सब्जियां शामिल हैं, जिनकी बाजार में उच्च कीमत मिलती है।

बागवानी फसलों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये कम समय में अच्छे लाभ की संभावना प्रदान करती हैं। फलों और सब्जियों की खेती में अधिक उत्पादन के साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता भी प्राप्त होती है। अब उपभोक्ताओं की जीवनशैली में बदलाव आ रहा है और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ रही है। इसलिए ताजे फल और सब्जियों की माँग भी लगातार बढ़ रही है, जिससे किसानों को स्थिर आय का एक अच्छा स्रोत भी मिल सकता है।

भारत में विभिन्न प्रकार के फल बागवानी के लिए उपयुक्त हैं। इनमें आम, अमरूद, केला, संतरा, सेब, अंगूर, लीची और पपीता जैसे फल शामिल हैं। इनमें से कुछ फल एक विशेष मौसम में उत्पादित होते हैं, जबकि कुछ फल वर्षभर उपलब्ध रहते हैं। ऐसे फलों में पपीता, केला और आम जो किसानों को वर्ष भर आय प्रदान कर सकते हैं।

व्यावसायिक बागवानी में सब्जियों की खेती भी एक प्रमुख पहल है। टमाटर, आलू, प्याज, बैंगन, शिमला मिर्च, गाजर, गोभी और पालक जैसी सब्जियों की मांग हर मौसम में बनी रहती है। खासकर शहरी क्षेत्रों में ताजा और उच्च गुणवत्ता वाली सब्जियों की खपत ज्यादा होती है जो किसानों के लिए एक अच्छा बाजार विकल्प साबित होती है।

फूलों की खेती भी एक लाभकारी बागवानी व्यवसाय है। गुलाब, चमेली, गेंदा, ग्लैडियोलस और लिली जैसे फूलों की खेती किसानों के लिए काफी लाभकारी हो सकती है। इन फूलों की मांग न केवल घरेलू बाजार में होती है बल्कि विदेशों में भी इनकी अच्छी माँग है। खासकर शादी, त्योहारों और धार्मिक आयोजनों में फूलों की बिक्री उच्चतम स्तर पर होती है। व्यावसायिक बागवानी में पारंपरिक कृषि फसलों की तुलना में अधिक मूल्य प्राप्त होता है जिससे किसान कम समय में अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। बागवानी उद्योग में कई तरह के रोजगार सृजित होते हैं। इसमें बागवानी विशेषज्ञ, कृषि श्रमिक, विपणन और वितरण एवं प्रसंस्करण आदि कार्य शामिल होते हैं। इसके अलावा फल और सब्जियाँ न केवल हमारे आहार में पोषण प्रदान करती हैं बल्कि इनका स्वास्थ्य और पोषण की दृष्टि से कई अधिक महत्व भी है। बागवानी फसलें जल की कमी में भी उत्पादित की जा सकती हैं और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में मदद करती हैं।

इसके अलावा, बागवानी क्षेत्र में और प्रसंस्करण की संभावनाएं भी तेजी से बढ़ रही हैं। फलों एवं सब्जियों से बने जैम, जेली, अचार, प्यूरी, ड्राईफ्रूट, फ्लोरल वॉटर, इत्र, निर्जलित सब्जियां और फ्रूट पल्प जैसे अनेक उत्पाद अब बाजार में मजबूत स्थान बना रहे हैं। इन उत्पादों के माध्यम से किसान अपनी पैदावार का उचित मूल्य प्राप्त कर सकते हैं और बाजार जोखिम को भी कम कर सकते हैं। इसके साथ ही, आधुनिक तकनीकों जैसे ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, संरक्षित खेती (पॉलीहाउस/नेट हाउस) और उन्नत किस्मों के उपयोग से उत्पादन क्षमता कई गुना बढ़ाई जा सकती है। ई-मार्केटिंग प्लेटफॉर्म और किसान-उपभोक्ता प्रत्यक्ष बिक्री मॉडल से किसानों को बेहतर दाम प्राप्त होते हैं।

भविष्य में बागवानी क्षेत्र न केवल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करेगा, बल्कि किसानों की आर्थिक सुरक्षा, ग्रामीण रोजगार वृद्धि एवं कृषि निर्यात को भी मजबूती प्रदान करेगा। यदि किसान वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाते हुए फसल विविधीकरण की ओर बढ़ें, तो बागवानी फसलों से स्थायी और उच्च लाभ अर्जित करना पूरी तरह संभव है। इस प्रकार बागवानी क्षेत्र भारतीय कृषि के लिए परिवर्तन का सशक्त माध्यम बन सकता है। इसके साथ ही, स्थानीय स्तर पर किसान उत्पादक संगठनों का गठन, सामूहिक विपणन और निर्यात-उन्मुख उत्पादन जैसी पहलें बागवानी क्षेत्र को और अधिक मजबूत बना सकती हैं। इन प्रयासों से किसानों को न केवल बेहतर बाजार पहुँच मिलेगी, बल्कि उन्हें स्थायी और सुरक्षित आय भी सुनिश्चित हो सकेगी।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

शुष्क पुष्पों से महकता भविष्य

शुभम राय

बढ़ते शहरीकरण और आधुनिकीकरण के दौर में पुष्पों की खेती आज सबसे लाभकारी कृषि उद्यमों में से एक बन गई है। धार्मिक आयोजनों, शादियों, मदर्स डे, वैलेंटाइन डे और त्योहारों के मौसम में पुष्पों की मांग चरम पर रहती है। किंतु पुष्पों की अत्यधिक नाशवान प्रकृति के कारण इनका एक बड़ा हिस्सा शीघ्र ही मुरझा जाता है, जिससे किसानों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। ऐसे शुष्क पुष्पों का उपयोग कर आकर्षक और महंगे उत्पाद जैसे- बुकमार्क, अभिनंदन कार्ड, पुष्पों की लालटेन, फोटो फ्रेम तथा फूल मोमबत्तियाँ आदि तैयार की जा सकती हैं। इन उत्पादों से न केवल अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है बल्कि पुष्पों का समुचित उपयोग भी सुनिश्चित होता है। महिलाएं लघु स्तर पर इस प्रकार का गृह-आधारित उद्यम प्रारंभ कर सकती हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण और कृषि अपशिष्ट के रचनात्मक उपयोग को बढ़ावा मिलेगा।

फूल मुरझा जाएं, पर उनका मूल्य कभी नहीं घटता। जब शुष्क फूल कला का रूप लेते हैं, तो ये केवल सुंदरता का प्रतीक नहीं रहते, बल्कि आत्मनिर्भरता की राह भी दिखाते हैं। ये फूल रचनात्मकता, आजीविका और सशक्तिकरण का प्रतीक बनकर नई संभावनाओं के द्वार खोलते हैं। विशेष रूप से महिलाओं के लिए यह क्षेत्र आर्थिक सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता की दिशा में एक सशक्त कदम है।

हस्तशिल्प उद्यमों के माध्यम से महिलाएं शुष्क पुष्पों से बुकमार्क, अभिनंदन कार्ड, सजावटी लालटेन, फोटो फ्रेम और मोमबत्तियाँ जैसी आकर्षक वस्तुएं तैयार कर सकती हैं, जिनकी बाजार में अच्छी मांग रहती है।

पुष्प एवं भू-दृश्य विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

शुष्क पुष्पों और पौधों का निर्यात भारत की अर्थव्यवस्था में भी उल्लेखनीय योगदान दे रहा है। वर्तमान में भारत इस क्षेत्र में अग्रणी देशों में से एक है और अपने शुष्क पुष्पों का लगभग 71 प्रतिशत निर्यात करता है। प्रमुख निर्यात गंतव्यों में अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया, रूस और यूरोपीय देश शामिल हैं। भारत से 500 से अधिक प्रजातियों के शुष्क पुष्पों का निर्यात लगभग 20 देशों को किया जाता है, जो न केवल भारतीय कारीगरी की पहचान है बल्कि पर्यावरण-अनुकूल उद्यमों की बढ़ती वैश्विक मांग को भी दर्शाता है।

शुष्क पुष्पों की सजावट के विभिन्न प्रकार

फ्लावर बुकमार्क्स: सपाट और शुष्क पुष्पों को लेमिनेटेड पेपर या कार्ड पर सजाकर आकर्षक बुकमार्क तैयार किए जाते हैं। इन बुकमार्क्स की प्राकृतिक रंगत और सुंदर बनावट इन्हें देखने वाले को तुरंत आकर्षित करती है। ये न केवल उपयोगी होते हैं, बल्कि उपहार और सजावट के रूप में भी लोकप्रिय हैं।

आकर्षक बुकमार्क्स

जैविक ग्रीटिंग कार्ड्स

शुष्क पुष्पों और पत्तियों को आकर्षक रूप से ग्रीटिंग कार्ड पर सजाकर सुंदर, व्यक्तिगत और पर्यावरण-अनुकूल उपहार तैयार किए जाते हैं। इन कार्डों में प्रकृति की सादगी और हस्तकला की सुंदरता झलकती है। ये कार्ड न केवल शुभकामनाएं व्यक्त करते हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण का संदेश भी देते हैं।

सजावटी फ्रेम

फ्लैट प्रेस किए हुए शुष्क पुष्पों को ग्लास फ्रेम में कलात्मक ढंग से सजाकर दीवारों या टेबल पर लगाया जाता है। ये फ्रेम प्राकृतिक सौंदर्य और हस्तकला का अनोखा संगम प्रस्तुत करते हैं तथा घर या कार्यालय की साज-सज्जा में आकर्षण प्रदान करते हैं।

सजावटी फ्रेम

शुष्क पुष्पों के लाभ

- **लंबे समय तक टिकाऊ**- शुष्क फूल महीनों या वर्षों तक अपनी सुंदरता बनाए रखते हैं।
- **कम देखभाल की आवश्यकता**- इन्हें पानी देने या विशेष पोषण की जरूरत नहीं होती।
- **पर्यावरण के अनुकूल**- ये पूरी तरह प्राकृतिक होते हैं और कृत्रिम सजावटी सामग्री का विकल्प बनते हैं।
- **आर्थिक रूप से लाभकारी**- ताजा पुष्पों की तुलना में ये सस्ते और हर मौसम में आसानी से उपलब्ध रहते हैं।
- **सुविधाजनक भंडारण**- इन्हें कहीं भी रखा जा सकता है, तापमान या नमी की विशेष चिंता नहीं रहती।

खुशबूदार मोमबत्तियाँ

शुष्क पुष्पों को मोमबत्तियों में सजावटी रूप में शामिल किया जाता है। जब ये मोमबत्तियाँ जलती हैं, तो पुष्पों की हल्की-फुल्की प्राकृतिक खुशबू वातावरण को सुगंधित बना देती है। ये मोमबत्तियाँ सौंदर्य और सुगंध का सुंदर मेल हैं तथा उपहार के रूप में भी अत्यंत लोकप्रिय हैं।

सगंधीय मोमबत्ती

वॉल क्विल्ट

वॉल क्विल्ट एक सजावटी कपड़े की कलाकृति होती है, जिसे दीवार पर सजावट के रूप में लगाया जाता है। इसमें शुष्क पुष्पों, रेशमी धागों और पारंपरिक डिजाइनों का कलात्मक संयोजन इसे विशिष्ट बनाता है। वॉल क्विल्ट न केवल एक आकर्षक सजावटी वस्तु है, बल्कि यह सांस्कृतिक विरासत और हस्तकला कौशल का प्रतीक भी मानी जाती है।

वैश्विक पुष्प बाजार में शीर्ष दस शुष्क सजावटी पौधे

शुष्क पुष्पों और पौधों की मांग विश्वभर में तेजी से बढ़ रही है। इनकी सुंदरता, स्थिरता और कलात्मक उपयोग ने इन्हें सजावटी उत्पादों के प्रमुख स्रोत के रूप में स्थापित किया है। वैश्विक स्तर पर निम्न दस शुष्क पौधे सर्वाधिक लोकप्रिय हैं-

- **हेलिक्रिसम**- चमकदार और लंबे समय तक टिकने वाले फूल, जिन्हें स्ट्रॉ फ्लावर भी कहा जाता है।
- **हेलिप्टरम**- कागज जैसे हल्के और रंग-बिरंगे शुष्क फूल, जो सजावट के लिए आदर्श हैं।
- **लिमोनियम**- विविध रंगों में उपलब्ध, ये फूल अपनी दीर्घायु के कारण विश्वभर में पसंद किए जाते हैं।
- **निजेला**- अनोखे आकार के बीज व पुष्पों वाला पौधा, शुष्क गुलदस्तों और सजावट में लोकप्रिय।
- **जिप्सोफिला**- छोटे-छोटे सफेद फूल, जिन्हें बेबी ब्रीथ के नाम से जाना जाता है, सौंदर्य व सौम्यता के प्रतीक माने जाते हैं।
- **डेल्फिनियम**- ऊँचे, रंगीन पुष्पों की बालियाँ, जो शुष्क रूप में भी अत्यंत आकर्षक लगती हैं।
- **एमारैंथस**- लटकने वाले पुष्पों की अनूठी बनावट के कारण यह सजावट में विशेष रूप से उपयोगी हैं।
- **पैपेवर**- खसखस (पोस्ता) के शुष्क फल अपने अद्भुत आकार के कारण सजावटी रूप में लोकप्रिय हैं।
- **कार्थेमस**- इसे सैफ्लावर कहा जाता है; सूखने के बाद भी इसकी पंखुड़ियाँ अपना चमकदार रंग बनाए रखती हैं।
- **गुलाब**- इसके शुष्क पुष्पों और पंखुड़ियों का उपयोग इत्र, सजावट और हस्तशिल्प निर्माण में व्यापक रूप से किया जाता है।

शुष्क पुष्पों का दैनिक जीवन में उपयोग

- **पंखुड़ियाँ:** गुलाब की पंखुड़ियों को सुखाकर तैयार किया जाता है। सूखी पंखुड़ियों का उपयोग ठंडे पेयों (शरबत आदि) और पोटपूरी में किया जाता है।
- **हर्बल फूलों की चाय:** गुलाब, लैवेंडर, कैमोमाइल जैसे फूलों को सुखाकर हर्बल चाय बनाई जाती है। यह चाय स्वादिष्ट होने के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होती है। यह शरीर को आराम देती है और नींद में मदद करती है।
- **पोटपूरी:** सूखे फूलों, पत्तियों और सुगंधित तेलों से बना मिश्रण, जो कमरे को सजाने और खुशबू के लिए उपयोग किया जाता है।
- **कुक्कुट आहार:** गेंदे की सूखी पंखुड़ियों से निकाले गए जैंथोफिल को पोल्ट्री फीड में मिलाया जाता है, जिससे अंडों की जर्दी और ब्रॉयलर चिकन की त्वचा का पीला रंग अधिक गहरा होता है।

शुष्क पुष्पों का बुके (गुच्छा)

शुष्क पुष्पों से बना बुके आजकल इको-फ्रेंडली उपहार का नया ट्रेंड बन चुका है। इसे शुष्क पुष्पों से सजाकर तैयार किया जाता है, जो न केवल देखने में आकर्षक हैं बल्कि लंबे समय तक सजे रहते हैं। इनमें प्रायः गुलाब, लैवेंडर, जिप्सोफिला जैसे पुष्पों का प्रयोग किया जाता है, जो सूखने के बाद भी अपनी रंगत और सौंदर्य बनाए रखते हैं।

पुष्पों को सुखाने की विधियाँ

पुष्पों को सुखाना उनकी सुरक्षा और दीर्घायु सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक प्रक्रिया है। शुष्क फूल न केवल लंबे समय तक अपनी खूबसूरती और रंग बनाए रखते हैं, बल्कि इन्हें सजावट, हस्तशिल्प और औद्योगिक उपयोग में भी लिया जा सकता है। पुष्पों को सुखाने की कई विधियाँ हैं-कुछ पारंपरिक और सरल हैं, तो कुछ आधुनिक तकनीकें अधिक प्रभावी और टिकाऊ परिणाम देती हैं।

- **प्राकृतिक विधि**

यह सबसे पुरानी और सरल विधि है। ताजे पुष्पों को गुच्छों में बांधकर उलटा लटकाया जाता है ताकि वे प्राकृतिक हवा में धीरे-धीरे सूख जाएँ। इस प्रक्रिया में पुष्पों के प्रकार और मोटाई के आधार पर लगभग 1 से 3 सप्ताह का समय लगता है। यह विधि लंबे और मजबूत पुष्पों के लिए उपयुक्त है।

पुष्पों को हवा में सुखाना

- **प्रेसिंग**

इस तकनीक में पुष्पों को दो भारी किताबों के बीच या विशेष प्रेसिंग बॉक्स में दबाकर सुखाया जाता है। यह विधि पतले और छोटे पुष्पों के लिए बेहतर होती है। पुष्पों

की प्राकृतिक आकृति और रंग बरकरार रहते हुए, उन्हें लगभग 1-2 सप्ताह में सुखाया जा सकता है।

- **सिलिका जेल से सुखाना**

सिलिका जेल एक सूखा पदार्थ है जो पुष्पों से नमी तेजी से सोख लेता है। पुष्पों को सिलिका जेल वाले कंटेनर में डालकर ढक दिया जाता है और लगभग 2-3 दिनों के लिए रखा जाता है। इस विधि से फूल जल्दी सूख जाते हैं और उनका रंग और आकार बेहतर ढंग से बरकरार रहता है।

- **ओवन द्वारा सुखाना**

कम तापमान पर ओवन में पुष्पों को सुखाना एक तेज और प्रभावी प्रक्रिया है। पुष्पों को बेकिंग ट्रे पर रखकर 50-60°C तापमान पर लगभग 2-3 घंटे तक रखा जाता है। यह विधि पुष्पों को जल्दी सुखाने में सहायक होती है।

पुष्पों को सुखाने हेतु सिलिका जेल का प्रयोग

- **माइक्रोवेव द्वारा सुखाना**

माइक्रोवेव में पुष्पों को सुखाना सबसे तेज तरीका माना जाता है। अक्सर इसे सिलिका जेल के साथ किया जाता है। पुष्पों को सिलिका जेल में दबाकर माइक्रोवेव में 1-3 मिनट तक गर्म किया जाता है। इस विधि से फूल बहुत जल्दी सूख जाते हैं और उनका रंग और बनावट अच्छे ढंग से बने रहते हैं।

शुष्क पुष्पों का व्यवसाय न केवल सौंदर्य और सजावट की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह भारत के निर्यात क्षेत्र में भी अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करवा रहा है। यह क्षेत्र महिलाओं के लिए स्वरोजगार और सशक्तिकरण का एक अच्छा माध्यम बनता जा रहा है। भविष्य में पर्यावरण के प्रति बढ़ती जागरूकता और प्राकृतिक सजावटी वस्तुओं की माँग के चलते शुष्क पुष्पों के व्यापार में और भी संभावनाएं हैं। ■

नवाचार

रिसाइकिल्ड सामग्री से तैयार सस्ता सौर ड्रायर

भारत के लघु किसान फलों, सब्जियों और मसालों की कटाई-उपरांत हानियों से जूझ रहे हैं। पारंपरिक धूप में सुखाने की विधि में उत्पाद धूल, कीट और असमान तापमान के कारण खराब हो जाते हैं, जबकि औद्योगिक ड्रायर महंगे और विद्युत निर्भर होते हैं। ऐसे में किसानों के लिए सस्ता, स्वच्छ और ऊर्जा-कुशल विकल्प आवश्यक हो जाता है।

इसी समस्या के समाधान के रूप में नगालैंड के जिला फेक के गाँव पोरबा के श्री सबयुविजो जुडो ने स्थानीय स्तर पर उपलब्ध रिसाइकिल्ड सामग्री से एक अभिनव सौर ड्रायर तैयार किया है। लकड़ी, एल्युमीनियम कैन, बॉक्स और पुराने फैन के पुर्जों से बना यह ड्रायर पूरी तरह सौर ऊर्जा पर आधारित है और इसके संचालन में किसी बाहरी ईंधन की आवश्यकता नहीं होती।

कम लागत से बना सौर ड्रायर

यह कीवी, लेदु, पर्सीमन, हल्दी और किंग मिर्च जैसी उच्च-मूल्य वाली फसलों को स्वच्छ, तेज और सुरक्षित ढंग से सुखाने में सक्षम है। इसका मॉड्यूलर डिजाइन विभिन्न फसलों और जलवायु परिस्थितियों के अनुसार अनुकूल है। कीमत मात्र ₹5,000-8,000 होने से यह औद्योगिक ड्रायर की तुलना में लगभग 90% सस्ता है। सुखाने का समय पारंपरिक विधि से 30% कम और लाभ-लागत अनुपात 2.8:1 है।

यह सौर ड्रायर वर्षभर उपयोग योग्य है, यहाँ तक कि मानसून में भी काम करता है। ग्रामीण, विशेषकर विद्युत विहीन क्षेत्रों के किसानों के लिए यह एक व्यावहारिक समाधान है जो ऊर्जा पर निर्भरता घटाकर उनकी आय बढ़ाने में मदद करता है। इस सौर ड्रायर की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसे किसान स्वयं भी स्थानीय कारीगरों की मदद से तैयार कर सकते हैं, इसमें उपयोग होने वाली सभी सामग्री गाँवों में आसानी से मिल जाती है। इसकी संरचना हल्की है, इसलिए इसे खेत, आँगन या छत-कहीं भी लगाया जा सकता है। ड्रायर में वायु संचरण

विपणन हेतु तैयार प्रसंस्करित शुष्क आलू

और ताप नियंत्रण की बुनियादी व्यवस्था है, जिससे सुखाने की गति बढ़ जाती है और उत्पाद में नमी समान रूप से कम होती है। इससे उपज का रंग, स्वाद और पोषण गुणवत्ता बेहतर बनी रहती है, और बाजार में अधिक दाम प्राप्त होता है। यह तकनीक कटाई-उपरांत हानि को कम करने के साथ भंडारण अवधि भी बढ़ाती है।

चूंकि इसका संचालन खर्च लगभग शून्य है, इसलिए यह प्रणाली लघु किसानों के लिए लंबे समय तक लाभदायक साबित होती है। इस प्रकार का नवाचार न केवल किसानों की आय बढ़ाता है, बल्कि स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग और सतत कृषि की दिशा में भी मजबूत कदम है।

(स्त्रोत: विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

प्राकृतिक एंटीबायोटिक्स से पोषण एवं औषधीय समृद्धि

भावना अस्नानी

प्राकृतिक खाद्य उत्पाद प्राचीन काल से ही मानव के लिए प्राथमिक औषधि के रूप में उपयोग किए जाते रहे हैं। इन्हें प्राकृतिक चिकित्सा अथवा आहार द्वारा उपचार भी कहा जाता है। इन खाद्य उत्पादों में ऐसे अनेक गुण मौजूद होते हैं जो प्राय: आधुनिक औषधियों में भी नहीं मिलते। इनका रासायनिक स्वरूप अत्यंत जटिल होता है, जिसमें विभिन्न जैव सक्रिय तत्व पाए जाते हैं। ये तत्व पौधे की पत्तियों, जड़ों, छाल, फलों आदि में अर्क, तेल या अन्य रूपों में विद्यमान रहते हैं। इनके आधार पर बने आहार उत्पादों में भी एंटीबायोटिक गुण पाए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, लहसुन और शहद जैसे पौधों और खाद्य उत्पादों के अर्क आहार में बैक्टीरिया की वृद्धि को कम कर उसे खराब होने से बचाते हैं।

खाद्य उत्पादों और मसालों के पौधे कहीं उत्पादित किए जाते हैं, तो कहीं स्वाभाविक रूप से भी उग आते हैं। आवश्यक है कि इनकी सही पहचान की जाए, ताकि यह पता लगाया जा सके कि इन्हें किस प्रकार उगाया, काटा और औषधीय उपयोग में लाया जा सकता है।

पौधों के भीतर मौजूद जटिल तत्व आपस में ऐसा तालमेल स्थापित करते हैं कि उनमें बैक्टीरिया और सूक्ष्मजीवों को नष्ट करने की क्षमता विकसित हो जाती है। इनका सोच-समझकर प्रयोग करने पर वे अनेक रोगों के उपचार में सुरक्षित और प्रभावी साबित होते हैं।

सहायक प्राध्यापक, जूनागढ़ कृषि विश्वविद्यालय, जूनागढ़, गुजरात

पौधे वास्तव में औषधियों का भंडार हैं, हालांकि कुछ परिस्थितियों में इनका उपयोग हानिकारक भी हो सकता है। जैसे किसी व्यक्ति को किसी तत्व से एलर्जी होना, पाचन संबंधी समस्या होना, या औषधि की तासीर का मौसम से असंतुलित होना। इसके बावजूद, पौधे पर्यावरण के लिए अत्यंत लाभकारी हैं क्योंकि ये प्रदूषण नहीं फैलाते और नवीकरणीय ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत भी माने जाते हैं।

प्राकृतिक एंटीबायोटिक गुणों से समृद्ध उत्पाद

- **लहसुन:** लंबे समय से माना जाता है कि लहसुन में रोगाणुरोधी गुण पाए जाते हैं। लहसुन का सांद्रण बैक्टीरिया के विरुद्ध प्रभावी है। आमतौर पर लहसुन का सेवन सुरक्षित है, लेकिन अधिक मात्रा में सेवन से आंतरिक रक्तस्राव हो सकता है। किसी घाव या दाग-धब्बे पर सीधे लहसुन का सांद्रण लगाया जा सकता है। इसकी तासीर उष्ण होने के कारण इसका प्रयोग ग्रीष्म ऋतु में कम करना चाहिए।
- **अजवायन:** इसके तेल में पाए जाने वाला घटक कार्वाकोल मुख्य चिकित्सकीय गुण प्रदान करता है। यह गैस्ट्रिक अल्सर को ठीक करने और सूजन कम करने में मदद करता है। अजवायन के तेल का मौखिक सेवन या सीधे त्वचा पर उपयोग नहीं करना चाहिए। त्वचा पर लगाने के लिए इसे किसी वाहक तेल जैसे जैतून या

हल्दी

करक्यूमिन की उपस्थिति के कारण हल्दी एक स्वाभाविक एंटीबायोटिक है, जो विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया, फफूंद और वायरस की वृद्धि को रोकने में सक्षम है। करक्यूमिन, बैक्टीरिया की कोशिका भित्ति को बाधित कर प्रोटीन और डीएनए संश्लेषण में हस्तक्षेप कर सकता है तथा जीवाणु की विभिन्न हानिकारक प्रजातियों से लड़ सकता है। हल्दी को पारंपरिक रूप से कुछ संक्रमणों के लिए एक सुरक्षित व प्रभावी उपचार माना जाता रहा है। सर्दी-जुकाम की स्थिति में हल्दी का पाउडर गर्म दूध में मिलाकर पीने से राहत मिलती है। चोट लगने पर हल्दी का पाउडर सीधे जख्म पर लगाने से बैक्टीरिया की वृद्धि रुकती है और चोट जल्दी ठीक होती है।

नारियल के तेल में मिलाकर उपयोग करना चाहिए। साइनस संक्रमण में अजवायन के तेल की कुछ बूंदें हवा में फैलाई जा सकती हैं।

- **अदरक:** वैज्ञानिक समुदाय अदरक को प्राकृतिक एंटीबायोटिक मानता है। इसमें रोगाणुरोधी गतिविधि के अलावा एंटीऑक्सीडेंट, एंटीइंफ्लेमेटरी और एंटीकोआगुलेंट गुण भी होते हैं।
  अदरक स्ट्रेप्टोकोकस म्यूटन्स, एंटरोकोकस फेकैलिस, स्टैफिलोकोकस प्रजाति और लैक्टोबैसिलस सहित विभिन्न बैक्टीरिया को प्रभावी ढंग से रोक सकता है।
- **लौंग:** ये सूखे फूल की कलियां होती हैं, जिनका प्रयोग मसाले के रूप में किया जाता है। लौंग के तेल में स्टैफिलोकोकस ऑरियस के विरुद्ध मजबूत प्रतिरोध प्रभाव होता है। लौंग के अर्क में जीवाणुरोधी क्षमता पाई जाती है।
- **दालचीनी:** इसकी छाल में पाए जाने वाला सिन्नामेल्डिहाइड एंटीबैक्टीरियल और सूजनरोधी गुण प्रदान करता है। यह मुंहासों और त्वचा संबंधी रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को रोक सकता है और खाद्य प्रणाली में संभावित रोगाणुरोधी एजेंट बन सकता है।
- **जीरा:** प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने और संक्रमण से लड़ने में जीरा बेहद उपयोगी उत्पाद है। इसमें क्यूमिनेल्डिहाइड और पायराजीन जैसे यौगिक होते हैं। इसका सेवन पाचन सुधारने और गैस बनने तथा पेट फूलने की समस्या में राहत देने में सहायक है।
- **काली मिर्च:** पाइपरिन यौगिक के कारण काली मिर्च में बैक्टीरिया नाशक गुण पाए जाते हैं, जो बैक्टीरिया की कोशिका झिल्लियों को बाधित कर उनकी वृद्धि को रोकते हैं।
- **सरसों का तेल:** इसमें स्वाभाविक रूप से एंटीबैक्टीरियल, एंटीफंगल और एंटीमाइक्रोबियल गुण पाए जाते हैं। यह मुंह में संक्रमण, आंतों के हानिकारक बैक्टीरिया, सिर के फंगल संक्रमण एवं डैंड्रफ के उपचार में सहायक है।
- **व्हीट जर्म ऑयल:** गेहूं के अंकुर का तेल प्राकृतिक एंटीबायोटिक स्रोत है। इसमें पाए जाने वाले यौगिक ग्राम-पॉजिटिव और ग्राम-नेगेटिव बैक्टीरिया दोनों से प्रभावी होते हैं।
- **लेमन ग्रास ऑयल:** इसमें सिट्रल नामक प्रमुख तत्व होता है, जो प्राकृतिक रोगाणुरोधी एजेंट के रूप में संक्रमण से बचाव में सहायक होता है।

जोखिम

सिर्फ इसलिए कि कोई चीज प्राकृतिक है, इसका मतलब यह नहीं कि वह हमेशा सुरक्षित है। प्राकृतिक एंटीबायोटिक्स गुणकारी हो सकते हैं, लेकिन बड़ी मात्रा में या लंबे समय तक लेने पर ये अत्यधिक शक्तिशाली और हानिकारक भी हो सकते हैं। कुछ प्राकृतिक दवाइओं की अन्य के साथ परस्पर क्रिया हानिकारक हो सकती है।

यदि इन्हें सही ढंग से उपयोग किया जाए, तो ये प्राकृतिक रोगाणुरोधक उपायों के रूप में सहायक साबित हो सकते हैं। हमारा शरीर लगातार कीटाणुओं से लड़ रहा होता है, और रोग तब महसूस होता है जब कीटाणु अत्यधिक संख्या में बढ़ जाते हैं।

प्राकृतिक रोगाणुरोधक सभी के लिए उपयुक्त नहीं हैं, खासकर शिशु, छोटे बच्चे, गर्भवती महिलाएं और स्तनपान करवाने वाली महिलाएं। उदाहरण के लिए, पका हुआ लहसुन सामान्यत: सुरक्षित है, लेकिन कच्चा या सांद्रित लहसुन लेने से आंतरिक और बाहरी रक्तस्राव की आशंका बढ़ सकती है। यह उन लोगों के लिए भी हानिकारक हो सकता है जिन्होंने हाल ही में सर्जरी करवाई हो या रक्त पतला करने वाली दवाइयां ले रहे हों।

चाहे हम पारंपरिक या प्राकृतिक एंटीबायोटिक्स का उपयोग कर रहे हों, यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनका प्रयोग सुरक्षित और प्रभावी है, हमेशा किसी पेशेवर आयुर्वेदिक चिकित्सक से परामर्श लेना आवश्यक है।

प्राकृतिक खाद्य उत्पाद, संतुलित आहार, पर्याप्त नींद, नियमित व्यायाम और तनाव प्रबंधन जैसी जीवनशैली शरीर को स्वस्थ रखने में मदद कर सकती है। अत: जब तक अत्यंत आवश्यक न हो, कृत्रिम एंटीबायोटिक्स का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि इनके बार-बार उपयोग से शरीर में प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो सकती है।

प्राकृतिक एंटीबायोटिक्स का उपयोग सीमित मात्रा में, बाहरी या आंतरिक तौर पर किया जा सकता है। संदेह होने पर इन्हें प्रयोग करने से पहले पेशेवर आयुर्वेदिक चिकित्सक से परामर्श लेना आवश्यक है। ■

नीबू

नीबू में साइट्रिक एसिड, फ्लेवोनॉइड और लाभकारी तेल जैसे जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जो विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया की वृद्धि को रोकते हैं। विटामिन सी की प्रचुरता इसे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और सर्दी-जुकाम जैसे रोगों से बचाव करने में सहायक बनाती है। नीबू का रस पाचन एंजाइमों को सक्रिय कर आहार को आसानी से पचाने में मदद करता है और गैस की समस्या को कम करता है। गर्म पानी में शहद के साथ नीबू का रस लेने से चयापचय तेज होता है, वजन कम करने में मदद मिलती है, लीवर विषमुक्त होता है और त्वचा चमकदार बनती है।

शहद

प्राचीन काल से प्रयोग में लाया जाने वाला शहद प्राकृतिक एंटीबायोटिक है। इसमें हाइड्रोजन पेरॉक्साइड और शर्करा की मात्रा उच्च होती है, जो बैक्टीरिया के विकास को रोकती है। इसका पी एच स्तर कम होने के कारण यह नमी खींचकर बैक्टीरिया को नष्ट कर देता है। शहद को सीधे घाव पर लगाने या आंतरिक संक्रमण में सेवन किया जा सकता है।

पोषण सुरक्षा के लिए विंग्ड बीन की खेती

निहारिका सिंह[1], **डी. के. उपाध्याय**[2], **सी. एन. राम**[3] और **सुमन पूनिया**[1]

विंग्ड बीन (सोफोकार्पस टेट्रागोनोलोबस एल.) एक प्रोटीन से भरपूर उष्णकटिबंधीय फलियों वाली सब्जी है, जो गर्म और आर्द्र भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में उगती है। एशिया में इसके प्रमुख उत्पादक देश भारत, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, फिलीपींस, चीन और न्यू गिनी हैं। इस पौधे की उच्च नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने में सहायक है। विंग्ड बीन कुपोषण से लड़ने और आहार पूरकता प्रदान करने की क्षमता रखती है। पौध, बीज, सब्जी और कंद की उपज एवं गुणवत्ता सुधार के लिए इसका उपयोग किया जाता है। यह फसल प्रतिकूल जैविक तनावों और सीमांत उच्चभूमि परिस्थितियों में भी टिकाऊ साबित होती है, जिससे संसाधन-विहीन घरों को आय का स्रोत मिल सकता है। फलियों में प्रोटीन की पोषण गुणवत्ता सामान्यतः कम होती है, परंतु विंग्ड बीन सल्फर युक्त अमीनो अम्ल, उच्च पाचनीय प्रोटीन और एंटी-न्यूट्रिशनल कारकों को संतुलित कर स्वास्थ्य सुधार में सहायक होती है। यही कारण है कि इसे फसल विविधता, मृदा स्वास्थ्य और कुपोषण निवारण हेतु व्यावसायिक खेती के लिए अनुशंसित किया गया है।

विंग्ड बीन, जिसे "सुपरमार्केट स्पीशीज" और पंखी सेम के रूप में भी जाना जाता है, पोषक तत्वों से भरपूर सब्जी है। इसमें हरी फलियाँ, कंदीय जड़ें, पत्तियाँ, अपरिपक्व तथा परिपक्व बीज सभी उपयोगी भाग हैं। इसकी पत्तियाँ पालक की तरह पकाई जा सकती हैं, फूल सलाद में, कंद कच्चे या प्रसंस्करित आहार के रूप में और बीज विभिन्न प्रसंस्करित खाद्य उत्पादों में काम आते हैं।

इसकी बेलदार प्रकृति और उच्च नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता के कारण इसे आवरण फसल, फसल चक्रीकरण और अंतरफसल प्रणाली में शामिल किया जाता है। इस प्रकार, विंग्ड बीन आहार विविधता बढ़ाकर पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने और जटिल व टिकाऊ कृषि प्रणालियों को मजबूत बनाने का एक प्रभावी विकल्प है।

[1]शोध छात्रा, [2]सहायक प्राध्यापक, [3]प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, सब्जी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या-224229 (उत्तर प्रदेश)

विविधता

विंग्ड बीन की विविधता न्यू गिनी, मॉरीशस और भारत में पाई जाती है, किंतु इसका सबसे समृद्ध केंद्र पापुआ न्यू गिनी माना जाता है। भारत में यह मुख्यतः असोम, मणिपुर, मिजोरम, केरल, तमिलनाडु और कर्नाटक में आदिवासी समुदायों द्वारा प्रांगणीय फसल के रूप में उगाई जाती है। हाल के परीक्षणों के उत्साहजनक परिणाम बताते हैं कि उत्तर भारतीय मैदानी क्षेत्रों में भी इसकी सफल व्यावसायिक खेती की संभावनाएँ प्रबल हैं।

वानस्पतिक वर्णन

विंग्ड बीन (सोफोकार्पस टेट्रागोनोलोबस) फैबेसी परिवार की एक शाकीय बारहमासी, परंतु प्रायः वार्षिक रूप से उगाई जाने वाली बेलदार फसल है। पर्याप्त सहारा मिलने पर इसका पतला तना 4 मीटर या उससे अधिक तक बढ़ सकता है। तना सामान्यतः हरा होता है, किंतु कुछ किस्मों में गुलाबी, बैंगनी या भूरा भी पाया जाता है।

इसके त्रिपत्रीय पत्ते आधार पर अंडाकार स्टिप्यूल से जुड़े होते हैं। पुष्पक्रम प्रपाक्षीय रैसीम प्रकार का होता है, जिसमें नीले से हल्के बैंगनी रंग के फूल प्रमुख रूप से प्रातः 10 से दोपहर 12 बजे तक खिलते हैं।

फलियां 15-22 सें.मी. लंबी और 2-3 सें.मी. चौड़ी, चार कोणीय होती हैं। प्रत्येक कोण पतले, पंखनुमा विस्तार में समाप्त होता है। फलियां खुरदरी, दांतेदार अथवा तरंगित हो सकती हैं। एक फली में 5-20 चमकदार, चिकने एवं गोलाकार बीज पाए जाते हैं, जिनका औसत वजन लगभग 250 मिलीग्राम होता है। पकने पर फलियां फट जाती हैं और बीज भूरे रंग के हो जाते हैं, जिनसे एस्पेरेगस जैसी हल्की सुगंध आती है।

विंग्ड बीन मुख्यतः स्वपरागणीय फसल है, किंतु लगभग 7.6% तक परपरागण भी देखा गया है। इसके पुष्प द्विलिंगी होते हैं और शीर्षिका फूल खुलने के बाद लगभग 34 घंटे तक ग्रहणशील रहती है। परागकोष का स्फुटन प्रायः पुष्प के खुलने से पूर्व हो जाता है।

जलवायु प्रतिरोधी फसल

पौष्टिक गुणों के साथ-साथ, विंग्ड बीन एक संभावित जलवायु प्रतिरोधी फसल है, जो सूखा, बाढ़, गर्मी और जैविक तनाव जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में अन्य मुख्य फसलों की तुलना में बेहतर अनुकूलन क्षमता प्रदर्शित करती है। कृषि जैव विविधता, स्थिरता, सामाजिक-आर्थिक अनुकूलता और मानव स्वास्थ्य में इसके योगदान को देखते हुए उपेक्षित एवं कम उपयोग की जाने वाली फसल प्रजातियों पर पुनः ध्यान दिया जा रहा है। इसी महत्व को पहचानते हुए अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने 1974 में "अल्प उपयोग में आने वाले उष्णकटिबंधीय पौधों" पर सर्वेक्षण करवाया और विंग्ड बीन को भविष्य की फसल के रूप में प्रोत्साहित किया। बावजूद इसके, भारत में इसकी खेती अभी तक सीमित क्षेत्रों तक ही सिमटी हुई है।

फलन अवस्था में फसल

सारणी 1: विंग्ड बीन का पोषण मूल्य (प्रति 100 ग्राम)

पोषक तत्व (प्रारंभिक)	मात्रा	अनुशंसित दैनिक मात्रा
ऊर्जा	49 किलो कैलोरी	2.5%
कार्बोहाइड्रेट	4.31 ग्रा.	3%
प्रोटीन	6.95 ग्रा.	12%
कुल वसा	0.87 ग्रा.	3%
कोलेस्ट्रॉल	0 मि.ग्रा.	0%
विटामिन		
फोलेट्स	66 माइक्रोग्राम	16.5%
नियासिन	0.900 मि.ग्रा.	6%
पैंटोथेनिक एसिड	0.059 मि.ग्रा.	1%
पाइरिडोक्सिन (बी6)	0.113 मि.ग्रा.	9%
राइबोफ्लेविन	0.100 मि.ग्रा.	8%
थायमिन	0.140 मि.ग्रा.	12%
विटामिन ए	128 IU	4%
विटामिन सी	18.3 मि.ग्रा.	30%
इलेक्ट्रोलाइट		
सोडियम	4 मि.ग्रा.	1%
पोटेशियम	240 मि.ग्रा.	5%
खनिज		
कैल्शियम	84 मि.ग्रा.	8%
तांबा	0.051 मि.ग्रा.	5.5%
लोहा	1.5 मि.ग्रा.	19%
मैग्नीशियम	34 मि.ग्रा.	8%
मैंग्नीज	0.218 मि.ग्रा.	9%
फॉस्फोरस	37 मि.ग्रा.	5%
सेलेनियम	1.5 माइक्रोग्राम	3%
जिंक	0.39 मि.ग्रा.	3%

जलवायु परिवर्तन के बीच अनुकूलन

- विंग्ड बीन सूखा, बाढ़, अत्यधिक तापमान, कीटों और रोगों का सामना करने में अन्य प्रमुख खाद्य फसलों की तुलना में अधिक सहनशील है। इस सब्जी के साथ वैश्विक खाद्य प्रणालियों का विविधीकरण अत्यधिक मौसम स्वरूप या दीर्घकालिक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में एक प्रभावी साधन साबित हो सकता है, साथ ही आहार असंतुलन की समस्या का समाधान भी कर सकता है।
- यह अनुमान है कि वर्ष 2050 तक खाद्य आपूर्ति को जलवायु परिवर्तन और वैश्विक खाद्य प्रणालियों पर जनसंख्या दबाव के प्रतिकूल प्रभावों से निपटने के लिए दोगुना करना होगा। प्रमुख फसलों का विविधीकरण और वे जिन प्रणालियों में उगती हैं, उनका विविधीकरण भविष्य की कृषि को टिकाऊ, लचीला और स्थानीय वातावरण और मिट्टी के लिए उपयुक्त बनाने के लिए आवश्यक है। एक हालिया विश्लेषण वैश्विक खाद्य खपत स्वरूप का एक चिंताजनक चित्र प्रस्तुत करता है और लोगों से आहार असंतुलन और वैश्विक खाद्य असुरक्षा से निपटने के लिए अधिक खाद्य स्रोतों का उपभोग करने का आग्रह करता है, जो आगे

बढ़ने की संभावना है। इसका मतलब है कि मनुष्यों को दुनिया की अधिक अल्प-प्रयुक्त फसलों का सेवन करना चाहिए, जिन्हें 'संभावित' या 'मामूली' फसलें भी कहा जाता है।

मृदा

भूमि को 3-4 सें.मी. गहराई तक जोता जाता है और एक बहुत महीन तली तैयार की जाती है। भूमि तैयारी का उद्देश्य आवश्यक मृदा की स्थिति प्रदान करना है, जो पौधों और जड़ों के विकास को बढ़ावा देती है। रेतीली से लेकर भारी चिकनी मृदा तक, अच्छी जल निकासी वाली रेतीली दोमट मृदा, जो जैविक पदार्थ में समृद्ध हो और जिसका पीएच मान 4.3-7.5 के बीच हो, प्राथमिकता दी जाती है।

जलवायु

विंग्ड बीन की खेती के लिए गर्म और आर्द्र जलवायु आदर्श मानी जाती है। यह फसल 15.4-27.5° सेल्सियस तापमान और 700-4100 मि.मी. वार्षिक वर्षा की सीमा को सहन कर सकती है। फूल आने की अवधि सितंबर के मध्य से अक्टूबर तक होती है, जो अल्प दिवस परिस्थितियों में पाई जाती है। हालांकि, 32° सेल्सियस से अधिक या 18° सेल्सियस से कम तापमान फूल बनने में बाधा उत्पन्न करता है। यह फसल 2000 मीटर तक की ऊंचाई पर सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

विंग्ड बीन के फूल

सारणी 2: विंग्ड बीन की किस्मों का विवरण

किस्म	आर्थिक भाग	बीज उपज (क्विंटल/हैक्टर)	विशेषताएँ
ए.के.डब्ल्यू.बी.-1	हरे फल और बीज	10-12	यह द्विमुखी किस्म है, जिसे सब्जी और दाल के रूप में उपयोग किया जाता है।
आई.डब्ल्यू.बी.-1	बीज	11-13	उच्च उपज देने वाली, मध्यम अवधि की किस्म तथा इसका परीक्षण वजन 36-38 ग्राम है।
आई.डब्ल्यू.बी.-2	हरे फल और बीज	13-14	यह किस्म बीज, हरे फल और चारे के लिए उपयुक्त है।
छत्तीसगढ़ पंखिया (RAU-2)	हरे फल और बीज	10-12	यह द्विमुखी किस्म है, जो छत्तीसगढ़ के आदिवासी क्षेत्रों में प्रांगणीय फसल (बाड़ी स्थिति) में अच्छे से उगती है।
काशी अन्नपूर्णा	सब्जी एवं बीज	15-20	60-70 दिनों में फलियाँ आना शुरू, उच्च उत्पादन क्षमता, हरे रंग की चौड़ी पंखदार फलियाँ।
बिरसा कामरेंगा-1	बीज, फली और कंद	14-29	उच्च प्रोटीन व तेल, बहुउपयोगी, पूर्वोत्तर राज्यों के लिए उपयुक्त।

बुआई का समय

सामान्यत: विंग्ड बीन की बुआई मानसून के आगमन के साथ जून-जुलाई में की जाती है। यदि फसल कंद के लिए उगाई जाती है तो उसे अगस्त-सितंबर में बोना चाहिए, क्योंकि जल्दी बुआई से अत्यधिक पौध वृद्धि होती है जिससे कंद का विकास रुक सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

दलहनी फसल होने के कारण, विंग्ड बीन में उत्तेजक गांठों की क्षमता होती है। इस दलहनी फसल को नाइट्रोजन स्थिरीकरण बैक्टीरिया के संरोपण की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि इसमें तेजी से बढ़ने और मृदा में नाइट्रोजन समृद्ध करने की क्षमता होती है, विशेष रूप से जोते हुए हालात में। उष्णकटिबंधीय मृदा में सामान्यत: नाइट्रोजन की कमी होती है, लेकिन विंग्ड बीन अनुर्वर मृदा में भी अच्छे से उगती है, जो इसकी वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिर करने की क्षमता को दर्शाता है।

बीज दर और बुआई

विंग्ड बीन का मुख्य रूप से बीजों से प्रवर्धन किया जाता है, लेकिन विशिष्ट परिस्थितियों में तने की कटाई से भी इसका प्रसार किया जा सकता है। अनुशंसित बीज दर 15-20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। हालांकि, बीजों की कठोर बीज परत होती है और उन्हें 1-2 दिनों तक भिगोने की आवश्यकता होती है। बीजों को 3-4 सें.मी. गहराई में बोया जाता है, जो बुआई के 5-7 दिनों में अंकुरित होते हैं। फसल के अच्छे विकास के लिए औसत तापमान 25° सेंटीग्रेड होना चाहिए और सूर्य की रोशनी को उचित रूप से प्राप्त करने के लिए उत्तर-दक्षिण दिशा में ट्रेलिस लगाना सर्वोत्तम है। व्यावसायिक फसल के लिए आदर्श अंतर 90 सें.मी. × 90 सें.मी. और बीज फसल के लिए 45 सें.मी. × 45 सें.मी. होता है। बौने प्रकारों के लिए 30 सें.मी. × 20 सें.मी. की दूरी रखी जा सकती है।

विंग्ड बीन की परिपक्व अवस्था

अम्लीय मृदा में विंग्ड बीन एल्यूमिनियम विषाक्तता के लक्षण प्रदर्शित करता है, जो अन्य दलहनी फसलों जैसा ही होता है। फसल को 20 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद और उर्वरक की मात्रा एनपीके 50:80:50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। फॉस्फोरस और पोटेशियम की पूरी खुराक और नाइट्रोजन की विभाजित खुराक बुआई के समय दी जाती है, जबकि नाइट्रोजन की बची हुई मात्रा 40 से 60 दिनों पर डाली जाती है।

खरपतवार नियंत्रण

विंग्ड बीन एक तेजी से बढ़ने वाली फसल है और बुआई के एक महीने के भीतर पौधों को ढक देती है। हालांकि, शुरुआती विकास के दौरान खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए 15-20 दिनों के बाद एक बार हाथ से खरपतवार हटाना आवश्यक है।

स्टैकिंग

स्टैकिंग एक बहुत महत्वपूर्ण प्रथा है ताकि विंग्ड बीन से अच्छा और गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त लिया जा सके, क्योंकि इसका तना अनिश्चित रूप से बढ़ता है। फसल के उपयोग और संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर स्टैकिंग की विभिन्न विधियाँ प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, कंद के लिए उगाई जाने वाली फसलों को भूमि पर फैलने दिया जाता है, लेकिन अगर फसल को केवल फलियों के लिए उगाया जाता है, तो छोटी स्टैक्स का उपयोग किया जाता है, ताकि हरी कोमल फलियों की लगातार छंटाई की जा सके। लता का सहारा उच्च बीज उत्पादन के लिए भी आवश्यक होता है।

भंडारण और देखभाल

पत्तियों और नई शाखाओं की कटाई तब की जाती है जब वे कोमल होते हैं। हरी फलियाँ लगभग बुआई से 10 सप्ताह बाद काटी जा सकती हैं। ताजे फल और कंदों की उपज 5-10 टन प्रति हैक्टर होती है, जबकि बीज की उपज 1-1.5 टन प्रति हैक्टर होती है। विंग्ड बीन को प्लास्टिक बैग में रखा जाता है, जिसे गले में कसकर बांधकर ताजगी बनाए रखी जाती है। फलियों की भंडारण अवधि को 10° सेंटीग्रेड और 90 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर 4 सप्ताह तक बढ़ाया जा सकता है।

पौधों की सुरक्षा

भारत में विंग्ड बीन पर कीट और रोगों की प्रमुख रिपोर्टें नहीं हैं। हालांकि, फॉल्स रस्ट और लीफ स्पॉट कुछ प्रमुख फफूंदजनित रोग हैं। इसी तरह माहूं कीट और रूट नॉट सूत्रकृमि फसल को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए, उपयुक्त पौध सुरक्षा उपायों को अपनाना चाहिए ताकि उपज में कमी को कम किया जा सके। ■

संभावनाएँ

विंग्ड बीन की असाधारण पोषण गुणवत्ता और उष्णकटिबंधीय अनुकूलता इसे दुनिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में खेती के लिए एक संभावित फसल बनाती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके संरक्षण, संवर्धन और उपयोग के लिए प्रयासों को बढ़ाना चाहिए, ताकि इसके अस्तित्व के बारे में स्थानीय लोगों, विशेषकर युवा पीढ़ी, में जागरूकता का प्रसार किया जा सके और इसके उपयोग को बढ़ावा मिल सके। सरकारी एजेंसियों द्वारा सक्षम नीतियाँ और वित्तीय सहायता, तथा गैर-सरकारी संगठनों का सहयोग शोध और विकास प्रयासों को प्रोत्साहित करने के लिए महत्वपूर्ण होगा। विंग्ड बीन की पोषण क्षमता इस प्रकार के प्रयासों की मांग करती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नवीनीकरण के प्रयास विंग्ड बीन को आगे बढ़ाएंगे और इसे वैश्विक स्तर पर प्रभाव डालने वाली फसल में बदल देंगे।

गुणों से भरपूर लायन्स मेन मशरूम

धर्मेश गुप्ता, दीक्षा शर्मा, अरूनेश कुमार और **देवजीत शर्मा**

लायन्स मेन मशरूम को वैज्ञानिक जगत में हेरिशियम एरिनेसियस कहा जाता है। इसे मंकी हेड, हेज हॉग और पहाड़ी साधु के नाम से भी जाना जाता है। इसका आकार शेर के अयाल जैसा दिखाई देता है, इसी कारण इसे यह नाम दिया गया है। यह मशरूम आकार में काफी बड़ा हो सकता है और इसका वजन आधा किलोग्राम तक पाया गया है। अन्य सामान्य मशरूम की तरह इसमें गिल्स नहीं होते, बल्कि इसके नीचे दाँतनुमा संरचनाएँ होती हैं, जो बीजाणु छोड़ती हैं। प्रारंभ में ये दाँत छोटे होते हैं, जो परिपक्वता अवधि के साथ लम्बे हो जाते हैं। ये मशरूम कभी-कभी स्पंजी और आंशिक रूप से खोखले भी दिखाई देते हैं। असामान्य दिखने वाला ये मशरूम मुख्यत: सड़े हुए वृक्षों और लकड़ियों पर उगता है। इसका वितरण पूरे उत्तरी गोलार्ध में है, विशेषकर एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में यह आमतौर पर पाया जाता है।

लायन्स मेन मशरूम एक औषधीय एवं पोषक तत्वों से भरपूर कवक है। यह अपने शेर जैसी अयाल स्वरूप और बुद्धि बर्धक गुणों कारण प्रसिद्ध है। यह समृति, तंत्रिका तंत्र और मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने में सहायक है।

उगाने की विधि

लायन्स मेन मशरूम को पॉलीप्रोपाइलीन के थैलों में उगाया जाता है। इसे चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों जैसे तुना, आम, पॉपलर, विलो, बान आदि के बुरादे पर लगाया जाता है। इस विधि में 80 प्रतिशत बुरादे में 20 प्रतिशत गेहूं की चोकर और 1 प्रतिशत चूना मिलाया जाता है तथा इस मिश्रण में लगभग 60 प्रतिशत पानी डालकर रातभर भिगोया जाता है।

अगले दिन इस मिश्रण को 1 से 1.5 किलोग्राम की मात्रा में पॉलीप्रोपाइलीन के थैलों में भरा जाता है। इन थैलों को 22 पाउंड प्रेशर पर 2 घंटे के लिए ऑटोक्लेव में जीवाणु रहित किया जाता है। ठंडा होने पर थैलों में 5 प्रतिशत की दर से स्पॉन मिलाया जाता है और इसे धीरे-धीरे बुरादे में अच्छी तरह मिला दिया जाता है।

पादप रोग विज्ञान विभाग, डा. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन (हिमाचल प्रदेश) - 173230

औषधीय गुण

इस मशरूम में कई तरह के औषधीय गुण मौजूद हैं, जिनमें अनेक संभावित स्वास्थ्य लाभ शामिल हैं। इन संभावित लाभों में मनोभ्रंश से सुरक्षा, पेट के अल्सर से बचाव, हृदय रोग का कम जोखिम, मधुमेह के लक्षणों का प्रबंधन आदि सम्मिलित हैं। इस मशरूम में ऐसे कई जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं जो याददाश्त बढ़ाने में सहायक हैं। यह चिंता और अवसाद को कम करने में भी उपयोगी पाया गया है। हमारे मस्तिष्क में होने वाली तंत्रिका संबंधी समस्याओं को ठीक करने में यह प्रभावी माना जाता है। इसके अतिरिक्त लायन्स मेन मशरूम के यौगिक न्यूरॉन्स के निर्माण में सहायक होते हैं और अल्जाइमर जैसे रोग को नियंत्रित करने में मदद कर सकते हैं। यह मशरूम वास्तव में कोई साधारण प्रजाति नहीं है, बल्कि औषधीय और पोषण संबंधी दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अब इन थैलों को 23-25° सेल्सियस तापमान पर कवक जाल फैलने के लिए रखा जाता है। लगभग 40-50 दिनों में कवक जाल पूरे बुरादे में फैल जाता है। इस कवक का स्वभाव ऐसा है कि यह कम दिखाई देता है और मशरूम निकलने लगते हैं।

जब छोटे-छोटे मशरूम निकलना शुरू हो जाएँ तो थैले खोल दिए जाते हैं। कमरे में कम से कम 80-85% नमी बनाए रखनी चाहिए। थैलों के किनारों पर 3-4 छेद भी किए जा सकते हैं। इसे उगाने के लिए प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। जब इसके बाल लटकने लगते हैं तो मशरूम तोड़ने के लिए तैयार हो जाता है।

फलन के समय इस मशरूम के लिए 18-22° सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है।

प्रयोग का तरीका

इसे तलकर, सुखाकर अथवा इसके मूल्यवर्धित उत्पाद बनाकर उपयोग में लाया जा सकता है। भारतीय बाजार में इसका मूल्य लगभग 8000-10000 रुपये प्रति किलोग्राम मिलता है। इस मशरूम के कैप्सूल, रस, पाउडर आदि भी बाजार में उपलब्ध हैं।

उच्च बाजार मूल्य और विविध उपयोग इसे किसानों तथा उपभोक्ताओं दोनों के लिए लाभकारी बनाते हैं। ■

मचान विधि से सब्जी उत्पादन

रिया मिश्रा[1] और **माखन सिंह कराड़ा**[2]

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के दौरान खेती के लिए उपयुक्त विकल्पों की खोज हमेशा से रही है। देश में वर्षा ऋतु (जुलाई से सितंबर) सब्जी उत्पादन के लिए एक उपयुक्त समय होता है। इस मौसम में विशेष रूप से ककुर्बिटेसी कुल की सब्जियाँ या फिर बेलवाली सब्जियाँ जैसे लौकी, तोरई, कद्दू, करेला, खीरा, ककड़ी, टिंडा आदि की खेती लाभकारी होती है तथा वर्षा ऋतु में बहुत अधिक उत्पादन प्रदान करती हैं। ये सब्जियाँ पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं और इनकी बाजार में मांग भी अधिक रहती है। लेकिन वर्षा ऋतु में सब्जी उत्पादन करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। इस मौसम में अत्यधिक नमी, जलभराव और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है, जिससे फसल की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों पर नकारात्मक असर पड़ता है। ऐसे में मचान विधि एक उपयोगी, वैज्ञानिक और व्यावहारिक समाधान के रूप में सामने आती है। इन सब्जियों की खेती यदि पारंपरिक पद्धति की बजाय मचान विधि से की जाए, तो उत्पादन, गुणवत्ता और किसानों की आमदनी में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। यह विधि कम लागत में, स्थानीय संसाधनों का उपयोग कर, अधिक उपज देने वाली तकनीक है।

मचान विधि बेल वर्गीय फसलों की उन्नत खेती की एक आधुनिक तकनीक है। इसका उपयोग लौकी, करेला, कद्दू, तोरई, खीरा, ककड़ी आदि जैसी ककुर्बिटेसी कुल की सब्जियों में किया जाता है। इस विधि में बेल को जमीन पर फैलने की बजाय ऊपर जाल, तार या बांस की बनी संरचना (मचान) पर बढ़ने दिया जाता है। इसके लिए बांस, लकड़ी, लोहे के पाइप या अन्य उपलब्ध साधनों से एक ढांचा तैयार किया जाता है, जिस पर बेलें फैलती हैं। इस ढांचे को खेत में खंभों के सहारे स्थापित किया जाता है और उसके ऊपर जाल, तार, रस्सी या नायलॉन नेटिंग बांध दी जाती है। बेलें स्वाभाविक रूप से ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति रखती हैं। जब उन्हें सहारा मिलता है, तो वे इस मचान पर बढ़कर फल देती हैं, जो हवा में लटके होते हैं। इससे इनकी गुणवत्ता बनी रहती है और सड़ने या खराब होने की आशंका कम हो जाती है। यह विधि वर्षा ऋतु में विशेष रूप से उपयोगी होती है क्योंकि इससे जल जमाव, रोग और कीट प्रकोप कम होता है।

लाभकारी है मचान विधि

[1]आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश-474002, [2]वानिकी विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश-482004

अतिरिक्त आय का सशक्त माध्यम

उपयोगी विधि

अधिक नमी और जलभराव से बचाव: वर्षा ऋतु में लगातार बारिश के कारण खेतों में पानी भर जाता है और मिट्टी बहुत नम हो जाती है। यदि बेलवाली फसलें जमीन पर फैली हों तो उनके फल मिट्टी के संपर्क में आकर सड़ जाते हैं। मचान विधि में फल हवा में लटकते हैं, जिससे वे जलभराव से प्रभावित नहीं होते और खराब नहीं होते।

रोग और कीटों का नियंत्रण: बारिश में नमी के कारण फंगल रोग (पाउडरी मिल्ड्यू, डाउनी मिल्ड्यू) और फल मक्खी, एफिड जैसे कीटों का प्रकोप बढ़ता है। जब बेलें मचान पर चढ़ी होती हैं, तो हवा और प्रकाश का बेहतर आवागमन होता है, जिससे रोग कम फैलते हैं और कीटों का नियंत्रण आसान हो जाता है।

बेहतर फल गुणवत्ता और अधिक उपज: मचान पर फल लटकते रहते हैं, जिससे उनका आकार, रंग और चमक बेहतर होती है। मिट्टी से संपर्क नहीं होने के कारण फल साफ और रोगमुक्त होते हैं। इससे बाजार में अच्छे दाम मिलते हैं और किसान की आय बढ़ती है।

खेत की कार्यक्षमता में वृद्धि: जमीन पर बेलें फैलने से खेत में चलना-फिरना मुश्किल हो जाता है, लेकिन मचान में नीचे जगह खाली रहती है जिससे सिंचाई, निराई-गुड़ाई, दवा छिड़काव और तुड़ाई जैसे कार्य आसान हो जाते हैं।

अतिरिक्त फसल की संभावना (इंटरक्रॉपिंग): मचान के नीचे कंद वाली फसलें जैसे प्याज, मूली, हल्दी, अदरक, धनिया, पालक, मूंग जैसी अल्पकालिक फसलें बोई जा सकती हैं, जिससे किसान एक ही खेत से दोहरा लाभ ले सकते हैं।

कम लागत में अधिक आमदनी: मचान बनाने में एक बार थोड़ी मेहनत और लागत आती है, लेकिन इससे उत्पादन, गुणवत्ता और आय तीनों में सुधार होता है। स्थानीय संसाधनों जैसे बांस और लकड़ी से मचान बनाकर लागत और भी कम की जा सकती है।

बाजार में प्रतिस्पर्धा में बढ़त: वर्षा ऋतु में रोगमुक्त और उच्च गुणवत्ता वाली सब्जियों की आपूर्ति कम होती है। यदि किसान मचान विधि से उत्पादन करें, तो उन्हें ऊँचे दाम मिलते हैं और बाजार में प्रतिस्पर्धा में बढ़त मिलती है।

मचान निर्माण

सामग्री

- बांस या लकड़ी के खंभे (7-8 फीट ऊँचे)
- लोहे की तार या मोटी रस्सी
- प्लास्टिक या नायलॉन का जाल
- कीलें या बांधने के लिए रस्सियाँ

निर्माण विधि

- खंभों को खेत में लगभग 1.5-2 मीटर की दूरी पर जमीन में गाड़ दें।
- सभी खंभों को आपस में जोड़ने के लिए उनके ऊपर क्षैतिज दिशा में तार या रस्सी बांधें।
- इसके ऊपर जाल या रस्सियों को फैलाकर बेलों के बढ़ने के लिए पर्याप्त सहारा दें।

भरपूर एवं स्वस्थ उपज

- गड्ढों या मेड़ों में पौधे रोपें और उन्हें समय-समय पर मचान पर बढ़ने दें।

स्थान चयन

- उत्तम जल निकास वाली दोमट या बलुई-दोमट मृदा वाली जगह का चयन करें।
- वर्षा जल की निकासी के लिए खेत में नालियों की उत्तम व्यवस्था करें।

वर्षा ऋतु में अतिरिक्त आमदनी

अधिक उत्पादन: लौकी, करेला, खीरा आदि फसलें मचान पर बेहतर फल देती हैं। इससे बाजार में अधिक मात्रा में सब्जियाँ बेची जा सकती हैं।

कम नुकसान: बारिश में जमीन पर बेलें होने से फल जल्दी सड़ते हैं, लेकिन मचान पर फल लटकते हैं और सुरक्षित रहते हैं।

ऊँची कीमत पर बिक्री: बाजार में अच्छी गुणवत्ता वाले फल की माँग ज्यादा होती है। व्यापारी ऐसे फल अच्छे दाम पर खरीदते हैं।

इंटरक्रॉपिंग: मचान के नीचे धनिया, पालक, मूंग, प्याज जैसी फसलें बोकर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

बीज उत्पादन: अच्छे पौधों से बीज तैयार कर स्थानीय किसानों को बेचा जा सकता है।

आधुनिक कृषि मॉडल

मचान निर्माण सेवा से आमदनी: यदि कोई किसान मचान बनाने में दक्ष हो जाए, तो अन्य किसानों के खेतों में मचान बनाकर अतिरिक्त आय भी अर्जित की जा सकती है।

मचान विधि न केवल एक खेती की तकनीक है, बल्कि एक सोच है-संसाधनों का समुचित उपयोग कर कम जमीन से अधिक उत्पादन पाने की।

यह जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल तरीका है और युवाओं के लिए यह एक आधुनिक और लाभकारी कृषि मॉडल बन सकता है।

मचान विधि एक ऐसी सरल, सस्ती और वैज्ञानिक पद्धति है, जो वर्षा ऋतु में सब्जी उत्पादन को लाभकारी बना देती है। यह तकनीक न सिर्फ उपज बढ़ाती है, बल्कि फसल की गुणवत्ता, रोग नियंत्रण और मेहनत को भी कम करती है। यदि किसान मचान विधि को अपनाएं और इसका प्रशिक्षण प्राप्त करें, तो यह आय का सशक्त माध्यम बन सकती है। ■

मृदा और जलवायु

वॉटर लिली को जलोढ़ मृदा में सबसे अच्छा उगाया जाता है। हार्डी वॉटर लिली को समशीतोष्ण जलवायु में सबसे अच्छा उगाया जाता है, जहां सर्दियों में पानी जम जाता है। जबकि, उष्णकटिबंधीय वॉटर लिली उष्णकटिबंधीय जलवायु पसंद करती है और ठंडी जलवायु के प्रति संवेदनशील होती है। वॉटर लिली को सीधे प्रकाश वाले स्थानों पर और यहां तक कि छाया या आंशिक छाया वाले स्थानों में भी सबसे अच्छा उगाया जा सकता है।

आकर्षक पुष्प नील कमल

प्रतिभा आनंद[1], **लोकेन्द्र सिंह**[2] और **माम चन्द सिंह**[2]

जलीय पौधे किसी भी जल उद्यान के महत्वपूर्ण घटक हैं। जलीय पौधों में निम्फैसी परिवार से संबंधित, नील कमल (वॉटर लिली) आकर्षक बारहमासी पौधा है। 'निम्फिया' एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है 'वॉटर लिली'। निम्फिया विश्व के विभिन्न भागों में व्यापक रूप से पाया जाता है। इसके विविध रंग, आकार और फूलों की सुगंध के कारण इसे बड़े पैमाने पर जलीय सजावटी पौधे के रूप में उपयोग किया जाता है। वॉटर लिली की 50 से अधिक प्रजातियाँ सजावट के रूप में उपयोग की जाती हैं और इन्हें जीनस निम्फिया के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

नील कमल (निम्फिया) को इसके शानदार फूलों के कारण एक सजावटी पौधे के रूप में अत्यधिक पसंद किया जाता है। भारत के विभिन्न हिस्सों में धार्मिक समारोह में इसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

नील कमल के विभिन्न भागों जैसे प्रकंद, कोमल पत्तियां और डंठल का उपयोग आहार के रूप में किया जाता है। निम्फिया के पौधे अत्यधिक पौष्टिक होते हैं और इनका औषधीय महत्व भी बहुत अधिक होता है। नील कमल छाया भी प्रदान करती है जो तालाबों और झीलों में शैवाल की वृद्धि को कम करने में मदद करती है। यह पानी को संक्रामक रोगाणुओं से मुक्त और जल प्रदूषण को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वानस्पतिक वर्णन– वानस्पतिक रूप से नील कमल जलीय पौधा है। इसमें कोणीय और उभरे हुए तने के साथ प्रकंद होते हैं। पत्तियाँ प्रकंदों से निकलती हैं और लंबी डंठल वाली, तैरती हुई 30 सें.मी. व्यास तक गोल होती हैं। पत्तियों के केंद्र में विशिष्ट "V" आकार के निशान होते हैं; शीर्ष पर हरा और निचली सतह पर बैंगनी रंग होता है। फूल दिन या रात में निकलते हैं और पानी की सतह पर तैरते हैं। फूल अधिकतर सफेद, पीले, बैंगनी, लाल, नीले और नारंगी रंग के होते हैं। फूलों का परागण अधिकतर भृंगों द्वारा होता है।

किस्में– नील कमल (वॉटर लिली) की बहुत सी किस्में सुंदर और आकर्षक फूलों और प्रकंदों के लिए उगाई जाती हैं। पेरीज डबल व्हाइट, कोलोराडो, टेक्सास डॉन, प्रिंसेस एलिजाबेथ, रेड फ्लेयर, पनामा पैसिफिक, सुल्तान, फुशिया पोम पोम, किंग ऑफ ब्लू, मायरा आदि।

प्रवर्धन– वॉटर लिली का प्रवर्धन बीज अथवा प्रकंदों द्वारा किया जाता है।

बीज द्वारा प्रवर्धन– उष्णकटिबंधीय लिली के बीज बुआई तक 0-4^{0}C तापमान पर प्रशीतित परिस्थितियों में संग्रहीत करने पर आसानी से अंकुरित हो जाते हैं। वहीं हार्डी वॉटर लिली को रोपण के समय तक पानी में छोड़ दिया जाता है। उच्च गुणवत्ता वाले बीज बड़े और गहरे रंग के होते हैं जबकि निम्न गुणवत्ता वाले बीज छोटे और हल्के रंग के होते हैं।

प्रकंदों द्वारा प्रवर्धन– वॉटर लिली का प्रवर्धन व्यावसायिक रूप से प्रकंदों द्वारा किया जाता है क्योंकि प्रकंदों द्वारा तैयार पौधे वानस्पतिक रूप से ओजस्वी होते हैं और बीजों की तुलना में प्रकंद गुणन भी तेज और आसानी से होता है। उष्णकटिबंधीय वॉटर लिली में प्रकंदों का विकास आसानी से होता है। प्रकंदों का चयन करते समय 2-3 सें.

वॉटर लिली के मनमोहक फूल

[1]पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण संभाग, [2]संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र, भाकृअनुसं., नई दिल्ली

मी. के बीच के व्यास वाले प्रकंदों का ही चयन करना चाहिए। जिन्हें मिट्टी की सतह के नीचे दबाया जाता है। प्रकंदों को मातृ पौधे से अलग करके नए स्थान पर रोपण के लिए उपयोग किया जाता है।

उत्पादन तकनीक

वॉटर लिली की खेती जल निकायों जैसे झीलों, तालाबों और व्यावसायिक रूप से जलमग्न कंटेनरों में भी की जाती है। इन्हें एक्वेरियम, मृदा के कंटेनरों या बगीचे में कृत्रिम तालाबों में लगाकर भी उगाया जाता है।

वॉटर लिली को कंटेनरों के साथ- साथ जलीय तालाबों या लिली तालाबों में रोपित किया जाता है। रोपण कंटेनर के किनारे पर किया जाता है। प्रकंद भागों को मिट्टी में दबा दिया जाता है। रोपण करते समय रोपण की गहराई 20 से 40 सें.मी. के बीच रखी जा सकती है और बाद में किस्म के आधार पर 30-60 सें.मी. के बीच उगाई जा सकती है। रोपण की गहराई प्रजातियों पर भी निर्भर करती है। कंद लगाने से पहले गमले या तालाब की मिट्टी में 2-3 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद को प्रति वर्ग मीटर मिलाना चाहिए।

नील कमल का खिला हुआ फूल

वॉटर लिली पत्ता

विकास और पुष्पण– वॉटर लिली पूरे बढ़ते मौसम के दौरान पत्ते देती है। पीक सीजन के दौरान पत्तियाँ 3-4 सप्ताह तक रहती हैं। वॉटर लिली में प्रचुर मात्रा में फूल आने के लिए 4-6 घंटे की तेज धूप आवश्यक है। उष्णकटिबंधीय लिली पानी की सतह के ऊपर केवल 20^{o}C से अधिक तापमान वाली परिस्थितियों में ही खिलती है, जबकि हार्डी वॉटर लिली ठंड की स्थिति में अच्छी तरह से पनपती है और फूल पानी की सतह पर तैरते हुए खिलते हैं। हार्डी लिली की तुलना में उष्णकटिबंधीय लिली में फूल प्रचुर मात्रा में होते हैं। हार्डी वॉटर लिली में आमतौर पर मई से सितंबर के दौरान फूल खिलते हैं। फूल 3-5 दिनों तक ताजा रहते हैं, दिन में खिलते हैं और रात में बंद हो जाते हैं। 3-5 दिनों के बाद, फूल पानी में डूब जाते हैं और बीज की फली बनना शुरू हो जाती है। जब बीज पक जाते हैं तो पानी में बिखर जाते हैं। गर्मियों के दौरान जलीय लिली में बहुत अधिक फूल आते हैं। अत: पुराने फूलों को पानी में डूबने से पहले हटा देना चाहिए।

रोग– क्राउन रॉट और पत्ती धब्बा वॉटर लिली में लगने वाले सबसे मुख्य रोग हैं। संक्रमित पौधों को हटाकर और नष्ट करके इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है।

कीट– वॉटर लिली एफिड, वॉटर लिली बीटल, ब्राउन चाइना मार्क मोथ और तालाब घोंघे वॉटर लिली के प्रमुख कीट हैं। ये फूलों की सुंदरता को प्रभावित करते हैं। इनमें से अधिकांश कीट गौण होते हैं और आमतौर पर प्रतिवर्ष एक ही स्थान पर नहीं होते हैं।

कटाई और प्रबंधन– अधिकांश वॉटर लिली के फूल पौधे पर 3-4 दिनों तक खुले रहते हैं। इसलिए अधिकतम फूलदान आयु प्राप्त करने के लिए उन्हें सही समय पर काटना आवश्यक है। वॉटर लिली की कटाई सुबह के समय तथा कली खुलने की अवस्था में की जाती है जब कलियाँ रंग दिखाना शुरू कर देती हैं या जब प्रथम दिन फूल खिलते हैं। कटाई पानी के अंदर तने को काटकर की जाती है। वॉटर लिली की फूलदान आयु 4-5 दिनों तक होती है।

बीज फली

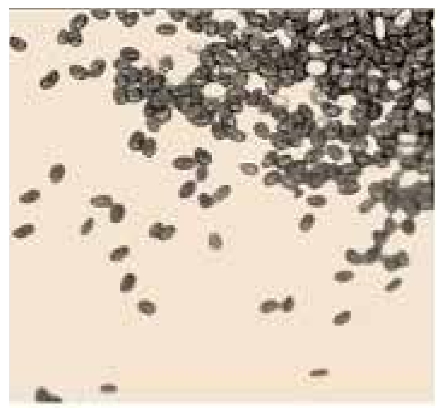

नील कमल के बीज

उपज– एक एकड़ क्षेत्र से प्रति दिन 300-500 फूल तक प्राप्त किए जा सकते हैं और वर्ष भर में हजारों फूलों की उपज प्राप्त की जा सकती है। कुछ प्रजातियों से बीज भी प्राप्त किए जाते हैं, जो खाद्य एवं औषधीय उपयोग में आते हैं। इनसे प्रति पौधा 100-150 ग्राम बीज तक मिल सकते हैं।

मूल्य– ताजे नील कमल के फूलों की कीमत ₹5 से ₹20 प्रति फूल तक होती है। दुर्लभ रंगों (जैसे नीला, बैंगनी या बहुरंगी) के फूलों की कीमत ₹30-₹50 प्रति फूल तक हो सकती है। ■

शुष्क एवं मरुस्थलीय क्षेत्रों की पोषक सब्जी काचरी

धनेश्वरी आर्य[1], **प्रकाश सिंगाठिया**[2], **बलराज सिंह**[1] और **शैली पुरोहित**[1]

काचरी (कुकुमिस कैलोसस) एक अल्पविकसित फल सब्जी है, जिसे मुख्यत: शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगाया जाता है। यह कुकर्बिटेसी कुल का एक प्रमुख पौधा है, जिसे हिंदी में 'काचरी', संस्कृत में 'कर्कटी' व मरुजा और अंग्रेजी में 'वाइल्ड मेलन' या 'स्मॉल मेलन' के नाम से जाना जाता है। यह कुकुमिस वंश से संबंधित है जो मुख्यत: रेगिस्तानी और अर्ध-रेगिस्तानी क्षेत्रों जैसे राजस्थान, हरियाणा और गुजरात में जंगली रूप में पाई जाती है। यह झाड़ियों या खेत की मेड़ों पर सहज रूप में उगती है। इसकी बेलें जमीन पर फैलती हैं और छोटे-छोटे फलों का उत्पादन करती हैं। इसके फल का उपयोग मुख्यत: चटनी, अचार और मसालेदार व्यंजन बनाने में किया जाता है। साथ ही यह पाचन में सहायक तथा औषधीय गुणों से युक्त होती है। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में यह एक पारंपरिक खाद्य स्रोत के रूप में लोकप्रिय है और स्थानीय बाजारों में इसकी अच्छी मांग होती है।

मरुस्थलीय जलवायु में उगाई जाने वाली पारंपरिक सब्जी फसलें, जैसे काचरी, काकड़िया, मतीरा, टिंडा, ग्वार फली, सांगरी, फोग, खींप और ग्वार पाठा आदि मानव जीवन, पशुधन, लोकप्रिय सब्जी और आजीविका के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्रों में काचरी आमतौर पर उर्वरकों और कीट नियंत्रण के लिए न्यूनतम संसाधन आवश्यकता के साथ रेतीली या दोमट मिट्टी में उगाई जाती है। इसे मानसून के मौसम में आमतौर पर जून से जुलाई तक बोया जाता है और 90-100 दिनों के बाद काटा जाता है।

छोटे खीरे या खरबूजे के समान इसके फल आमतौर पर अचार, चटनी और पारंपरिक व्यंजनों में उपयोग किए जाते हैं। हल्की जुताई, सीधी बुआई और समय-समय पर निराई-गुड़ाई के माध्यम से मिट्टी तैयार करना इसकी खेती के मुख्य चरण हैं। अध्ययन से पता चला है कि किसान प्रति हैक्टर खेती से ₹75,000 से ₹1,50,000 तक कमा रहे हैं। कम लागत, अधिक आय, बहुउपयोगिता और वर्ष में दो बार फसल उत्पादन की संभावनाओं के कारण काचरी की खेती अत्यंत लाभकारी है। बंजर भूमि पर इसकी खेती से मिट्टी कटाव कम होता है। हालांकि, बीजों की समय पर उपलब्धता इसकी खेती के विस्तार में चुनौती है। इसे व्यावसायिक स्तर पर सफल बनाने के लिए वैज्ञानिक खेती में इसकी उन्नत किस्मों को अपनाना आवश्यक है।

जलवायु

काचरी गर्म जलवायु की फसल है, इसके पौधे अत्यधिक सूखा और उच्च तापमान जैसी वातावरणीय परिस्थितियों को आसानी से सहन कर सकते हैं। यह फसल कम वर्षा (250-300 मि.मी.) या सीमित सिंचाई की स्थिति में भी अच्छा वानस्पतिक विकास और फल उत्पादन प्रदान करती है। बीजों के अधिकतम अंकुरण के लिए 20°-22° सेल्सियस का तापमान आदर्श है जबकि 32°-38° सेल्सियस का तापमान पौधों की वानस्पतिक वृद्धि और फल के जमाव के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है। इसके बावजूद, गर्म मरुस्थलीय क्षेत्रों में, जहां तापमान 45°-48° सेल्सियस तक पहुंच जाता है, काचरी की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

काचरी का पोषण मूल्य

काचरी में 100 ग्राम ताजे फल के आधार पर 88.2% जल, 7.45% कार्बोहाइड्रेट, 0.28% क्रूड प्रोटीन, 1.28% वसा, 1.21% क्रूड फाइबर, और 1.46% कुल पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, इसमें 0.09 मि. ग्रा. कैल्शियम, 0.0029 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 0.182 मि.ग्रा. आयरन, 0.0046 मि.ग्रा. कॉपर, 0.052

काचरी में पुष्पण अवस्था

[1] बागवानी विभाग, श्री करण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान- 303 329, [2]सब्जी विभाग, भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु- 560 089

मि.ग्रा. जिंक, 0.058 मि.ग्रा. मैंग्नीज, और 29.81 मि.ग्रा. विटामिन सी मौजूद होता है।

ताजा फल प्रति 100 ग्राम में लगभग 47.24 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। इसी प्रकार, 100 ग्राम सूखे काचरी फल में 63.68% कार्बोहाइड्रेट, 2.41% क्रूड प्रोटीन, 11.01% वसा, 10.41% क्रूड फाइबर और 12.51 मि.ग्रा. कुल पोषक तत्व होते हैं। इसमें 0.82 मि.ग्रा. कैल्शियम, 0.025 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 1.56 मि.ग्रा. आयरन, 0.04 मि.ग्रा. कॉपर, 0.45 मि.ग्रा. जिंक, 0.495 मि.ग्रा. मैंग्नीज, और 17.02 मि.ग्रा. विटामिन सी पाया जाता है।

प्रजातियाँ: भाकृअनुप-सीआईएएच, बीकानेर द्वारा विकसित काचरी की एएचके-119 और एएचके-200 प्रजातियों में एएचके-119 अधिक उपज देने वाली और व्यावसायिक रूप से लोकप्रिय है। यह चटनी, पाउडर, अचार और सॉस के लिए उपयुक्त है।

भूमि की तैयारी: काचरी की खेती में अधिक उपज के लिए भूमि की उचित तैयारी आवश्यक है, विशेषकर शुष्क, रेतीली मिट्टी में।

- **जुताई:** मिट्टी के ढेले तोड़ने और जड़ों की बेहतर पैठ के लिए खेत को 2-3 बार जोता जाता है।
- **निराई:** बुआई से पहले सभी खरपतवार हटाकर पोषक तत्वों और पानी के लिए प्रतिस्पर्धा कम करें।
- **खाद:** मृदा की उर्वराशक्ति और संरचना सुधार के लिए प्रति हैक्टर 10-15 टन जैविक खाद या गोबर खाद डालें।
- **मेड़ और कूड़:** बेहतर जल निकासी और सिंचाई के दौरान जलभराव से बचने के लिए उठी हुई क्यारियाँ या मेड़ और कूड़ बनाएं।

काचरी की परिपक्व फसल अवस्था

बीज चयन और बुआई: काचरी की सफल खेती के लिए बीज की गुणवत्ता और सही बुआई तकनीक महत्वपूर्ण है। उच्च गुणवत्ता एवं आनुवंशिक शुद्धता वाले प्रमाणित बीजों का चयन करना चाहिए जो बेहतर अंकुरण, रोग प्रतिरोधी एवं अधिक उपज देने वाले होते हैं।

- **बुआई के समय:** बुआई का आदर्श समय खरीफ मौसम (जुलाई-अगस्त) में मानसून की शुरुआत के साथ होता है।
- **बीज दर:** प्रति हैक्टर रोपण के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज उपयुक्त है।
- **दूरी:** पंक्तियों के बीच 1 मीटर और पौधों के बीच 50-60 सें.मी. की दूरी रखें ताकि वायु का संचार और धूप पर्याप्त मात्रा में मिले।
- **गहराई:** बीजों को 2-3 सें.मी. गहराई पर बोया जाता है। सीधे बीज बोना प्राथमिक विधि है, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पौधों को रोपित भी किया जा सकता है। दोनों ही विधियाँ सही तरीके से प्रयोग करने पर अधिक उपज और स्वस्थ पौधों को सुनिश्चित करती हैं।

खाद-उर्वरक प्रबंधन: काचरी फसल के लिए खाद और उर्वरकों के उपयोग की समेकित व्यवस्था नाली अथवा बूँद-बूँद प्रणाली से विकसित की गई है। इसमें खेत की तैयारी के बाद देसी खाद (50 क्विं.), वर्मीकम्पोस्ट (5 क्विं.), डाइअमोनियम फॉस्फेट (100 कि.ग्रा.), सिंगल सुपर फॉस्फेट (100 कि.ग्रा.), यूरिया (50 कि.ग्रा.), म्यूरेट ऑफ पोटाश (50 कि.ग्रा.) और कीटनाशी पाउडर (10 कि.ग्रा.) का मिश्रण प्रति हैक्टर की दर से बिखेरा जाता है। इसके बाद नालियाँ बनाकर बुआई की जाती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा (यूरिया 50-60 कि.ग्रा./हैक्टर) को तीन भागों में बांट कर - बुआई के 18-25 दिनों बाद, 30-35 दिनों पर और 45-50 दिनों पर देने से सबसे अच्छा परिणाम मिलता है। यूरिया का प्रयोग करते समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। बूँद-बूँद प्रणाली में यूरिया

काचरी में फलन अवस्था

गुणकारी काचरी

भारत का पश्चिमी क्षेत्र, विशेषकर राजस्थान, अपनी शुष्क जलवायु के लिए जाना जाता है जहाँ थार रेगिस्तान राज्य के 70% भूभाग पर फैला हुआ है। कठोर परिस्थितियों के बावजूद, काचरी (कुकुमिस कैलोसस) जैसी पारंपरिक सूखारोधी फसलें यहाँ सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। बारिश के मौसम में यह प्राकृतिक रूप से या फसल के रूप में उगाई जाती है। काचरी एक लता वाला पौधा है, इसके अंडाकार फल हरे से पीले-भूरे रंग के होते हैं। यह कार्बोहाइड्रेट, फाइबर, प्रोटीन, विटामिन सी और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर है। इसके बीजों में विटामिन-ई और ओमेगा-3 वसा अम्ल प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। काचरी के औषधीय गुण पाचन, त्वचा और मूत्र संबंधी समस्याओं में लाभकारी होते हैं। इसका सूखा पाउडर पेट के रोगों के इलाज में उपयोग किया जाता है। काचरी को अचार, चटनी और मसाला मिश्रणों में भी शामिल किया जाता है, जिससे पारंपरिक राजस्थानी व्यंजनों में एक विशिष्ट खट्टापन आता है। सूखी काचरी को फिर से गीला करके करी और ग्रेवी में इस्तेमाल किया जा सकता है।

का उपयोग 4-6 भागों में विभाजित करके 10-12 दिनों के अंतराल पर किया जाता है। बारानी फसल में यूरिया का 2 प्रतिशत घोल (20 ग्राम/लीटर) का 300-400 लीटर/हैक्टर छिड़काव लाभकारी होता है।

बीज उपचार और बुआई: काचरी की उन्नत किस्मों का चयन करें और बुआई हेतु 1.0-1.5 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होते हैं। शीघ्र अंकुरण के लिए बीजों को 1-2 घंटे पानी में डुबोकर रखें या गर्म पानी में नमक (20 ग्राम/लीटर) के साथ डुबोकर उपचार करें। फिर, इन बीजों को टाट की गीली पोटली में बांधकर रात भर गोबर की खाद के गड्ढे में रखें। बुआई से पहले इन बीजों को कैप्टॉन, थीरम या बाविस्टिन (2-3 ग्राम/किलोग्राम) से उपचारित करें।

सिंचाई विधियाँ: काचरी की खेती के लिए वर्षा आधारित खेती में मिश्रित अथवा एकल पद्धति में छिटकवां या कूड़ विधि से सिंचाई की जा सकती है, जबकि सिंचित फसल के लिए क्यारी, कूड़ या नाली विधि से सिंचाई की जाती है। सीमित वर्षा और जल बचत के लिए नई सिंचाई विधियाँ विकसित की गई हैं।

कीट और रोग प्रबंधन

काचरी अपनी कठोर प्रकृति के कारण कई कीटों और रोगों से प्रतिरोधक होती है। हालांकि, उच्च नमी की परिस्थितियों में कुछ सामान्य समस्याएं फसल को प्रभावित कर सकती हैं।

बुआई

काचरी की खेती के लिए बुआई योजनाबद्ध तरीके से की जानी चाहिए ताकि वातावरणीय रुकावटों का प्रभाव कम हो और अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक उपज मिल सके। वर्षा आधारित खेती के लिए बुआई जून के अंत से जुलाई के अंत तक की जानी चाहिए। सिंचित फसल के लिए जुलाई और फरवरी महीने में बुआई करना उपयुक्त है। शुष्क जलवायु में काचरी की नियमित बुआई जनवरी-मार्च और जून-जुलाई में की जा सकती है, ताकि अप्रैल-दिसम्बर तक ताजे फल बाजार में उपलब्ध रहें। संरक्षित फसल उत्पादन की तकनीकी विधियाँ (जैसे नाली आच्छादन / पॉली टनल) विकसित की गई हैं, जिसमें दिसम्बर के अंत से जनवरी के पहले सप्ताह तक बुआई करके नालियाँ/ लोहे के ढांचे को पॉलीथीन से ढका जाता है। प्रारंभिक 30-35 दिनों तक फसल को ठंड एवं पाले से सुरक्षित रखा जाता है और फरवरी में पॉलीथीन हटाकर आगे की प्रक्रिया की जाती है।

तुड़ाई उपरांत प्राप्त उपज

कीट

- **फल मक्खियाँ:** ये फल के अंदर अंडे देती हैं, जिससे फल को नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिए फेरोमोन ट्रैप और नीम आधारित स्प्रे का उपयोग करें।
- **आंवला:** ये कीट युवा शाखाओं से रस चूसते हैं। आंवला के नियंत्रण के लिए कीटनाशक साबुन या नीम तेल के स्प्रे का उपयोग किया जा सकता है।

रोग

- **पाउडरी मिल्ड्यू:** यह एक फफूंद जनित रोग है जो पत्तियों को प्रभावित करता है। इसे सल्फर आधारित फफूंदी रोधी या नीम तेल से नियंत्रित किया जा सकता है।
- **फ्यूजेरियम विल्ट:** यह एक मृदाजनित रोग है जो पौधों को मुरझाने का कारण बनता है। इसे रोकने के लिए फसल चक्रण और रोग मुक्त बीजों का उपयोग किया जाता है।

कटाई और तुड़ाई उपरांत प्रबंधन

बुआई के 70-80 दिनों के भीतर काचरी फल परिपक्व हो जाते हैं। वहीं कटाई का आदर्श समय तब होता है जब फल पूर्ण आकार में होते हैं और हल्के हरे-पीले रंग में होते हैं। कटाई सामान्यत: हाथ से की जाती है ताकि फल को नुकसान न पहुंचे। औसतन, काचरी प्रति हैक्टर 8-10 टन तक उपज देती है, हालांकि यह खेती के तरीकों पर भी निर्भर करता है।

कटाई उपरांत, प्रबंधन बेहद महत्वपूर्ण है। काचरी को ठंडी और सूखी परिस्थितियों में संग्रहीत किया जाना चाहिए ताकि यह खराब न हो, और उचित भंडारण में यह 2-3 सप्ताह तक सुरक्षित रहती है। चटनी, अचार और मसाला मिश्रणों में उपयोग किया जा सकता है। काचरी की बाजार में उच्च मांग है, विशेष रूप से राजस्थान के स्थानीय बाजारों में, जहां इसे पारंपरिक व्यंजनों में अपनी अनूठी स्वाद विशेषताओं के लिए उच्च मूल्यांकन प्राप्त है

काचरी की खेती शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में किसानों के लिए अपनी फसलों को विविधतापूर्ण बनाने, जल-गहन खेती पर निर्भरता कम करने और टिकाऊ कृषि में योगदान करने का एक बेहतरीन अवसर प्रदान करती है। इसकी कठोर जलवायु में अनुकूलन क्षमता, आर्थिक व्यवहार्यता और बढ़ती बाजार मांग इसे एक आशाजनक फसल बनाती है, जो शुष्क क्षेत्रों में जीवनयापन में सुधार कर सकती है और पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रख सकती है। भूमि तैयारी, बुआई, सिंचाई और कीट प्रबंधन में उन्नत वैज्ञानिक तकनीकों का पालन करके, किसान इस जलवायु प्रभावी फसल से महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

बहुउपयोगी

नीलगिरी का सफल उत्पादन

पूजा किशोर

नीलगिरी एक तेजी से बढ़ने वाला ऑस्ट्रेलियाई सदाबहार वृक्ष है। इसे यूकेलिप्टस, सदा, मैसूर गम, हॉर्न-कैप यूकेलिप्टस, ब्लू गम और मैसूर हाइब्रिड जैसे नामों से जाना जाता है। यह एक बहुउपयोगी वृक्ष प्रजाति है, जो न केवल कई औद्योगिक उत्पादों का प्रमुख स्रोत है, बल्कि औषधीय दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी है। खांसी, जकड़न और फ्लू जैसे लक्षणों को कम करने में इसका तेल सहायक माना जाता है। मांसपेशियों और जोड़ों के दर्द से राहत देने वाले लोशन और मरहम में भी नीलगिरी तेल का व्यापक प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग एंटीबायोटिक, सुगंध, सौंदर्य प्रसाधन, स्वादवर्धक, दंत-उत्पादों जैसे उद्योगों में विलायक के रूप में किया जाता है। हजारों वर्षों से चीनी, भारतीय आयुर्वेदिक, ग्रीक और अन्य यूरोपीय चिकित्सा प्रणालियों में नीलगिरी का प्रयोग विभिन्न रोगों के उपचार के लिए किया जाता रहा है। इसके अलावा नीलगिरी की खेती से लकड़ी, ईंधन और गूदा उत्पादन से स्थायी आय प्राप्त होती है। यह फसल कम समय में आर्थिक लाभ देकर आत्मनिर्भर और बाजार में प्रतिस्पर्धी बनाती है।

नीलगिरी के वृक्षों की 400 से अधिक किस्में पाई जाती हैं। इनमें नीलगिरी ग्लोबुलस, जिसे सामान्यतः ब्लू गम कहा जाता है, नीलगिरी तेल का प्रमुख स्रोत है। तेल निकालने के लिए वाष्प आसवन विधि का प्रयोग किया जाता है। प्राप्त तेल एक सफेद तरल होता है, जिसमें मजबूत, मीठी और वुडी सुगंध होती है। इसमें मुख्य यौगिक यूकेलिप्टॉल (1,8-सिनिओल) पाया जाता है।

नीलगिरी की पत्तियों में फ्लेवोनॉइड और टैनिन जैसे तत्व भी मौजूद होते हैं। फ्लेवोनॉइड पौधों में पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट हैं, जबकि टैनिन सूजन को कम करने में सहायक होते हैं।

सहायक तकनीकी प्रबंधक, कृषि विभाग, बिहार

वितरण

- भारत में नीलगिरी, सागौन के बाद दूसरी सबसे अधिक लगाई जाने वाली प्रजाति है।
- इसे पूर्वोत्तर राज्यों को छोड़कर पूरे भारत में व्यापक रूप से लगाया जाता है।
- इसे वनों के भीतर तथा बाहर-कृषि भूमि, बंजर भूमि, सड़क किनारे आदि स्थानों पर लगाया जाता है।

जलवायु

- **तापमान:** अधिकतम 22° से.-32° से., न्यूनतम 2° से.-12° से.।
- **औसत वार्षिक वर्षा:** लगभग 1500 मि.मी.।
- **ऊँचाई:** समुद्र तल से 1700 मीटर तक।

स्वास्थ्य लाभ

- **श्वसन संबंधी समस्याएँ:** शोध से संकेत मिलता है कि नीलगिरी तेल में जीवाणुरोधी गुण होते हैं, जो ऊपरी श्वसन तंत्र में संक्रमणकारी बैक्टीरिया पर प्रभाव डाल सकते हैं। यह खांसी की दवाओं, लोजेंज और इनहेलेंट्स में प्रयुक्त होता है।
- **जुकाम और ब्रोंकाइटिस:** इसकी वाष्प गले में जकड़न को कम करने में मदद करती है और यह एक पारंपरिक घरेलू उपचार माना जाता है।
- **दंत देखभाल:** माउथवॉश और दंत उपचार में इसके जीवाणुरोधी गुणों का उपयोग होता है। नीलगिरी अर्क वाली च्युइंग गम से पीरियोडॉन्टल स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है।
- **त्वचा और संक्रमण:** पारंपरिक उपचारों में इसे फंगल संक्रमण और घावों के उपचार में उपयोग किया जाता है।
- **कीट प्रतिरोधी:** नीलगिरी तेल मच्छरों और मक्खियों के नियंत्रण एक प्रभावी कीटनाशक है।
- **दर्द निवारण:** इसमें एनाल्जेसिक गुण पाए जाते हैं और यह जोड़ों, मांसपेशियों और गठिया संबंधी दर्द में राहत प्रदान कर सकता है।

मृदा

नीलगिरी विभिन्न प्रकार की मृदा में अच्छी तरह उगाया जा सकता है, जैसे- जलोढ़ मृदा, लेटराइट मृदा, रेतीले टीले तथा रेतीली दोमट मृदा। यह प्रजाति 10 तक के पी.एच मान वाली मृदा में उगने की क्षमता रखती है। परन्तु, जब पी.एच मान 8.5 से अधिक हो जाता है, तो वृक्ष की वृद्धि एवं विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फेनोलॉजी

- यह एक सदाबहार वृक्ष प्रजाति है।
- फूल वर्ष में दो बार आते हैं- मई-जून और अक्टूबर-नवंबर।
- प्रारंभिक फूलों में बीजों की संख्या अधिक होती है।
- बीज संग्रह का समय जुलाई-अगस्त है।

सिल्वीकल्चरल लक्षण

- यह प्रजाति तेज प्रकाश की आवश्यकता रखती है।

बीज संग्रह एवं भंडारण

- बीज सामान्यत: 10 वर्ष पुराने वृक्षों से एकत्र किए जाते हैं, यद्यपि उपजाऊ बीज युवा पौधों से भी प्राप्त हो सकते हैं।
- एक वर्ष में दो बार (फरवरी-मार्च, अक्टूबर-नवंबर) बीज संग्रह किया जाता है।
- दानों को एक दिन तक छाया में सुखाया जाता है।
- बीजों को दानों से अलग करने के लिए धीरे-धीरे हिलाया जाता है।
- बीजों को शुष्क एवं ठंडी जगह पर टिन में सुरक्षित रखा जाता है।
- औसतन 1 किलोग्राम दानों में लगभग 3,67,400 बीज पाए जाते हैं।

रोपने के लिए तैयार नीलगिरी के पौधे

- पतली छाल एवं वाष्पशील तेल के कारण ठंड के प्रति अति संवेदनशील है।
- इसमें उत्कृष्ट कॉपिसिंग क्षमता पाई जाती है।
- स्वभावत: यह वायु परागित वृक्ष है।
- दीमक आक्रमण से क्षति की आशंका बनी रहती है।

प्राकृतिक उत्थान

- चींटियों द्वारा बीजों के नष्ट किए जाने के कारण प्राकृतिक पुनर्जनन अत्यंत कमजोर होता है।
- पत्ती कॉलर से नई पौध विकसित होती है।
- नीलगिरी की पत्तियाँ विषाक्त होती हैं तथा इनमें अंकुरण अवरोधक पाए जाते हैं, जिससे प्राकृतिक पुनर्जनन बाधित होता है।

नर्सरी तकनीक

- बीज बुआई का समय अक्टूबर-नवंबर अथवा फरवरी-मार्च है।
- बीज बोने से पूर्व मिट्टी को दीमक से बचाने हेतु एल्ड्रेक्स या बीएचसी से उपचारित किया जाता है।
- बीजों को 20 ग्राम/मी. की दर से, 10 सें.मी. की दूरी पर तथा 2.5 मि.मी. गहराई में पंक्तियों में बोया जाता है।
- अंकुरण बुआई के 5-15 दिनों के अंदर हो जाता है।
- एक ग्राम बीजों से लगभग 60-75 पौधे प्राप्त होते हैं।

वर्णन

- यह वृक्ष लगभग 40 मीटर तक ऊँचा हो सकता है।
- इसका तना सीधा, साफ और सफेद विचित्र छाल से युक्त होता है।
- वृक्ष का शीर्ष (ताज) खुला होता है।
- किशोर अवस्था में पत्तियाँ सामने-सामने होती हैं।
- वयस्क अवस्था में पत्तियाँ वैकल्पिक हो जाती हैं।
- पुष्पक्रम आमतौर पर बगल से निकलते हैं और प्राय: सात फूलों वाले गुच्छों के रूप में पाए जाते हैं।

पौध उगाना एवं रोपण

- जब पौधे 4-8 सें.मी. की ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं तो उन्हें पॉलीथीन बैग में प्रत्यारोपित किया जाता है।
- पॉलीथीन बैग में रोपे गए पौधों को कुछ दिनों तक छाया में रखा जाता है, तत्पश्चात उन्हें खुले में धँसी हुई क्यारियों में रखा जाता है।
- प्रारंभिक अवस्था में पौधों को हाथ से सिंचित किया जाता है और बाद में क्यारी में नियमित सिंचाई से बढ़ाया जाता है।

बाहरी रोपण

- पौध लगाए जाने वाले क्षेत्र की उचित जुताई एवं मृदा की तैयारी आवश्यक है।
- तराई क्षेत्रों में पहले वर्ष केवल नकदी फसलें उगाई जाती हैं और दूसरे वर्ष वृक्षारोपण किया जाता है।
- गड्ढों का आकार सामान्यत: 45 सें.मी. अथवा 30 सें.मी. रखा जाता है।
- खारी एवं क्षारीय मृदा के लिए 60 सें.मी. आकार के बड़े गड्ढे खोदे जाते हैं और उनमें अच्छी मृदा भरकर प्रतिस्थापन किया जाता है।
- दक्षिण-पश्चिम मानसून प्रभावित क्षेत्रों में जुलाई माह में तथा उत्तर-पूर्व मानसून प्रभावित क्षेत्रों में अक्टूबर-नवंबर में रोपण किया जाता है।
- रोपण के समय कंटेनर या पॉलीथीन बैग अवश्य हटा देना चाहिए।
- मृदा में रोपण के समय पानी और उर्वरकों का प्रयोग लाभकारी होता है।
- पहले वर्ष में रोपण के तुरंत बाद सूखे पौधों को बदलना आवश्यक है।
- शुष्क क्षेत्रों में पहले वर्ष में 3-4 बार सिंचाई करनी चाहिए जिससे अच्छा रोपण स्टॉक प्राप्त हो सके।

अन्तराल

रोपण का अंतर वृक्षारोपण के उद्देश्य पर निर्भर करता है:

- **सामान्य उद्देश्य हेतु:** 1.8 मी. × 1.8 मी. से 3 मी. × 3 मी. तक।
- **ईंधन लकड़ी के लिए:** 1 मी. × 1 मी. या 1.5 मी. × 1.5 मी.।

पारिस्थितिकी प्रभाव

- **मरुस्थलीकरण नियंत्रण:** यूकेलिप्टस बंजर और निम्न मृदा गुणवत्ता में भी पनप सकता है, जिससे मरुस्थलीकरण को रोका जा सकता है और अनुर्वर भूमि को पुनर्जीवित किया जा सकता है।
- **कार्बन अवशोषण:** यह वृक्ष बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करता है और जलवायु परिवर्तन को कम करने में योगदान देता है।
- **बायोमास निर्माण:** यूकेलिप्टस ईंधन और लकड़ी की आवश्यकताओं को पूरा कर प्राकृतिक वनों पर दबाव को कम करता है और जैव विविधता संरक्षण में सहायक बनता है।
- **मृदा संरक्षण:** इसके बागान मृदा के कटाव दर को कम करने में सहायक होते हैं।

नीलगिरी की भरपूर उपज

- **लुगदी लकड़ी के लिए:** 2 मी. × 2 मी. या 3 मी. × 2 मी.।
- **आरा लकड़ी के लिए:** 3 मी. × 3 मी.।
- **विंडब्रेक/शेल्टरबेल्ट के लिए:** 1.5 मी. × 1.5 मी. या 2 मी. × 1 मी.।

प्रबंधन: निराई-गुड़ाई, खाद/उर्वरक का प्रयोग, तथा पौधों की छंटाई समय-समय पर की जानी चाहिए।

आर्थिक महत्व

- लुगदी और ईंधन उत्पादन हेतु प्रमुख प्रजाति।
- सामान्य उपयोग जैसे लकड़ी, तना एवं फर्नीचर निर्माण के लिए उपयोगी।
- पत्तियों से प्राप्त तेल, जो औषधीय एवं औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

सामाजिक प्रभाव

- **आय और आत्मनिर्भरता:** किसानों को लकड़ी की आवश्यकताओं में आत्मनिर्भर बनने और अतिरिक्त आय अर्जित करने का अवसर मिलता है।
- **ग्रामीण जीवन:** फसल उत्पादन के बाद यह ग्रामीण परिवारों की आय का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत बन सकता है।
- **लकड़ी की उपलब्धता:** ईंधन, निर्माण, फर्नीचर, कागज और अन्य उत्पादों के लिए स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
- **भूमि सुधार:** मरुस्थलीकरण को नियंत्रित करने और बंजर भूमि पर हरियाली लाने में सहायक।
- **कृषि-वानिकी प्रणाली:** पर्याप्त जल उपलब्धता वाले क्षेत्रों में इसे दलहनी फसलों के साथ लगाया जा सकता है, जिससे सीमांत और परती भूमि का सुधार होता है और खाद्य सुरक्षा भी बनी रहती है।

पादप वृद्धि

- नीलगिरी का क्लोनल प्रचार ग्राफ्टिंग, नवोदित, एयर-लेयरिंग तथा नरम लकड़ी की कलमों द्वारा किया जा सकता है।
- प्रोपागुल का उपचार आईबीए 10,000 पीपीएम से किया जाना चाहिए।
- चयनित वृक्ष को भूमि-स्तर से लगभग 12 सें.मी ऊँचाई पर काटा जाता है।
- कॉपिस शूट वृक्ष काटने के 45वें से 55वें दिन के बीच संग्रहित किए जाते हैं।
- संग्रहित कट शूट को प्रत्यारोपण से पूर्व पानी से भरी बाल्टी में रखा जाता है।
- कलमों की लंबाई सामान्यतः 10-15 सें.मी होती है।
- कलमों के आधार का उपचार बेनेट कवकनाशी 200 पीपीएम घोल में 15-30 मिनट तक किया जाता है।
- इसके बाद 2 सें.मी आधार को आईबीए टैल्क पाउडर 6000 पीपीएम से उपचारित किया जाता है।
- कलमों को पॉलीथीन ट्यूब में लगाया जाता है।
- बढ़वार के लिए वर्मीक्युलाइट का प्रयोग किया जाता है।
- 5-6 सप्ताह में कलमें एक अच्छी जड़ प्रणाली विकसित कर लेती हैं।

यूकेलिप्टस का सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिक योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। सही प्रबंधन और उपयुक्त स्थान पर रोपण के साथ इसके लाभ कहीं अधिक हो सकते हैं। यह न केवल लकड़ी, ऊर्जा और निर्माण सामग्री की आपूर्ति करता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, भूमि सुधार और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती प्रदान करता है।

लघु किसानों के लिए यह फसल उत्पादन और पशुपालन की तुलना में बेहतर आर्थिक लाभ प्रदान करती है। साथ ही, जलवायु परिवर्तन को कम करने, मृदा एवं जल संरक्षण और हरियाली बढ़ाने में भी योगदान देती है।

कुल मिलाकर, यूकेलिप्टस ग्रामीण परिवारों की आय और खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के साथ गरीबी उन्मूलन और सतत विकास में सहायक सिद्ध होता है। ■

फालसा का मूल्य संवर्धन

[1]आकांक्षा सिंह, [2]वी के सिंह, [3]अंगद प्रसाद और [4]शशांक सिंह

फालसा, भारत के सबसे पुराने स्वदेशी फलों में से एक है। इसकी खेती उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों जैसे भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में व्यापक रूप से की जाती है। भारत में इसका व्यावसायिक उत्पादन मुख्यत: पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और हिमालयी क्षेत्रों में होता है। लघु स्तर पर यह महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल में भी उगाया जाता है। फालसा को अल्प-प्रयुक्त फल फसल की श्रेणी में रखा जाता है, लेकिन यह वास्तव में एक बहुउद्देशीय फल है, जिसमें उच्च पोषण और औषधीय गुण पाए जाते हैं। इसके सेवन से मानव स्वास्थ्य पर अनेक सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं, क्योंकि इसमें विभिन्न पोषक और औषधीय तत्व प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। गर्मियों के दौरान इसके पके हुए ताजे फलों का सीधा उपभोग किया जाता है या फिर इन्हें शीतल पेय में मिलाकर पिया जाता है। मूल्य संवर्धन के माध्यम से फालसा का उपयोग औषधीय, पोषण और व्यावसायिक स्तर पर बढ़ाया जा सकता है, जिससे इसका बाजार विस्तार संभव है।

पोषण गुण

फालसा के पके हुए फलों में विटामिन ए (16.11 मि.ग्रा.) और विटामिन सी (4.38 मि.ग्रा.) की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। इनमें कैल्शियम (820.32 मि.ग्रा./100 ग्राम), फॉस्फोरस (814.5 मि.ग्रा./100 ग्राम) और आयरन (27.10 मि.ग्रा./100 ग्राम) जैसे खनिज भी उच्च स्तर पर उपलब्ध होते हैं। साथ ही, फालसा में आहार फाइबर की मात्रा अधिक और कैलोरी तथा वसा की मात्रा कम होती है। स्वस्थ जीवन के लिए ये सभी पोषक तत्व अत्यंत आवश्यक माने जाते हैं।

फालसा पौधे के सभी भाग – जड़, तना/टहनी, पत्ती एवं फल – मानव और पशुओं दोनों के लिए उपयोगी हैं। यह आहार, चारा, फाइबर, ईंधन, लकड़ी और पारंपरिक दवाइओं का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके फलों को औषधीय गुणों के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। फल कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाले होते हैं और इनमें कैंसर रोधी गुण भी पाए जाते हैं। इसके अलावा, फल और बीज पोटेशियम, कैल्शियम, आयरन, फॉस्फोरस और सोडियम जैसे खनिजों से भरपूर होते हैं, जबकि जिंक, निकल, कोबाल्ट और क्रोमियम सूक्ष्म मात्रा में उपलब्ध रहते हैं।

फालसा की छाल के रेशों का उपयोग रस्सियाँ बनाने में किया जाता है। इसकी पत्तियों में हल्के एंटीबायोटिक गुण पाए जाते हैं। पत्तियों को रातभर भिगोकर बनाए गए पेस्ट का उपयोग जलन, फोड़े, एक्जिमा और त्वचा की सूजन से राहत पाने के लिए किया जाता है।

यह फल सामान्यत: ताजा खाया जाता है, लेकिन परिपक्व फलों से सिरका, अचार और तेल आधारित उत्पाद भी तैयार किए जाते हैं। फालसा स्क्वैश फलों के गूदे और चीनी सिरप से बनाया जाता है। इसी प्रकार, फलों के गूदे और चीनी के मिश्रण से जैम तैयार होता है, जिसे बेकरी उत्पादों के लिए टॉपिंग के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा, पत्तियों और फलों को पानी में उबालकर पौष्टिक और सुगंधित हर्बल चाय भी बनाई जाती है।

औषधीय महत्व

फालसा को एक ऐसा पौधा माना जाता है जिसके मानव स्वास्थ्य पर अनेक लाभकारी प्रभाव देखे गए हैं। इसे पोषण और उपचार दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण फल फसल की श्रेणी में रखा गया है। पिछले वर्षों में किए गए अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि फालसा फल के औषधीय और आहार संबंधी गुण अत्यंत उपयोगी हैं।

फालसा का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में विभिन्न रोगों के उपचार हेतु किया जाता रहा है। इसका प्रयोग सूजन संबंधी समस्याओं, श्वसन रोगों, हृदय विकारों और रक्त संबंधी रोगों के उपचार में किया जाता है। पौधे में पाए जाने वाले विभिन्न पॉलीफेनोलिक यौगिक उच्च एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि प्रदर्शित करते हैं।

पारंपरिक रूप से फालसा के फलों का उपयोग इसके रेडियोप्रोटेक्टिव, एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटी-माइक्रोबियल और एंटी कैंसर गुणों के कारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह हृदय रोगों के उपचार में भी सहायक सिद्ध होता है।

जैविक घटक

फालसा जैवसक्रिय यौगिकों जैसे एंथोसायनिन, फ्लेवोनोइड और टैनिन का एक समृद्ध स्रोत है। इन यौगिकों की सांद्रता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें बढ़ने की परिस्थितियाँ, कटाई का समय, कटाई के बाद का भंडारण, निष्कर्षण विधि, प्रयुक्त उर्वरक, उगाने का मौसम तथा अपनाई गई

[1]वैज्ञानिक, खाद्य प्रसंस्करण, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, [3]वैज्ञानिक सस्य विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र – मऊ, [4]वैज्ञानिक, उद्यान विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र – गाजीपुर, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज – अयोध्या

फालसा शरबत

फालसा शरबत के लाभ

- **पाचन में सहायक:** यह एसिडिटी और बदहजमी जैसी समस्याओं को कम करता है तथा शरीर की गर्मी और पित्त वृद्धि से बचाव करता है। इसके एंटीऑक्सीडेंट और जीवाणुरोधी गुण पाचन तंत्र को मजबूत बनाते हैं।
- **हृदय के लिए लाभकारी:** इसमें मौजूद अमीनो अम्ल हृदय को स्वस्थ बनाए रखते हैं और रक्त संचार सुधारते हैं। यह ब्लड प्रेशर नियंत्रित करने और शरीर को डिटॉक्स करने में मदद करता है।
- **त्वचा के लिए:** एंटी-फंगल और एंटीऑक्सीडेंट गुण त्वचा को स्वस्थ रखते हैं। फालसा का उपयोग फेस पैक के रूप में भी किया जा सकता है।
- **पैरों की जलन के लिए:** यह शरबत पैरों की जलन दूर करने और उच्च रक्तचाप की समस्या को कम करने में सहायक है।
- **जोड़ों के दर्द में राहत:** गठिया और जोड़ों के दर्द की समस्या में यह लाभकारी सिद्ध होता है।
- **ऊर्जा स्तर में वृद्धि:** सोडियम और पोटेशियम से भरपूर होने के कारण यह शरीर में आयन और तरल संतुलन बनाए रखता है, जिससे ऊर्जा बढ़ती है।
- **इलेक्ट्रोलाइट्स का संतुलन:** यह गर्मी या शारीरिक गतिविधि के दौरान खोए हुए खनिज और तरल पदार्थों की पूर्ति करता है।

कृषि पद्धतियाँ प्रमुख हैं। फालसा के बीजों में टैनिन, स्टार्च, खनिज और तेल की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है, जो इसके औषधीय एवं पोषण महत्व को और बढ़ाते हैं।

फालसा शरबत

गर्मियों के मौसम में फालसा अत्यधिक लोकप्रिय फल है। इसका स्वाद हल्का मीठा और थोड़ा खट्टा होता है, और यह लाल से काले रंग तक के छोटे आकार के फलों में मिलता है। फालसा विटामिन एवं अनेक पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी है। फालसा का शरबत घर पर आसानी से बनाया जा सकता है। यह पेय स्वादिष्ट, पौष्टिक और सुपर रिफ्रेशिंग होने के साथ-साथ गर्मियों के लिए बेहद स्वास्थ्यवर्धक है।

फालसा शरबत बनाने की विधि

सामग्री:

- 250 ग्राम फालसा
- 3 कप चीनी
- स्वादानुसार काला नमक
- 1 नीबू
- पुदीने की पत्तियाँ (गार्निश के लिए)
- बर्फ के टुकड़े
- आवश्यकतानुसार पानी

विधि

- सबसे पहले फालसा को अच्छी तरह धोया जाता है। इसके बाद एक पैन को गर्म कर और उसमें फालसा फल को, 1 कप पानी और चीनी डालकर लगभग 5 मिनट तक उबाला जाता है।
- उबालने के बाद फल का गूदा आसानी से बीजों से अलग हो जाता है। मिश्रण को छानकर उसमें स्वादानुसार काला नमक डाला जाता है।
- ठंडा होने के बाद इसे वायुरोधी बोतल में भरकर 7 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।
- इसे परोसने के लिए 4 कप जूस में 3 कप ठंडा पानी, आइस क्यूब्स और नीबू का रस मिलाया जा सकता है।
- पुदीने की पत्तियों से गार्निश कर ताजगी से भरा फालसा शरबत उपयोग के लिए तैयार किया जाता है।

सारणी: फालसा फल के औषधीय प्रभाव

औषधीय गतिविधियाँ	क्रिया का तरीका
एंटीऑक्सीडेंट	फालसा में विटामिन सी, कुल फेनोलिक, एंथोसायनिन, फ्लेवोनोइड और टैनिन सहित एंटीऑक्सीडेंट की उच्च मात्रा होती है।
कैंसर रोधी	फालसा पौधे के फल और पत्ते कैंसर कोशिका रेखाओं के विरुद्ध महत्वपूर्ण कैंसररोधी गतिविधि प्रदर्शित करती हैं।
मधुमेह रोधी	फालसा पौधे के फल, तने और पत्तियों में एंटीहाइपरग्लाइसेमिक क्रिया देखी गई
एंटी-माइक्रोबियल	फालसा के पौधे में जैविक रूप से सक्रिय पदार्थों की प्रचुर मात्रा होती है जो इसे कई अलग-अलग तंत्रों से बैक्टीरिया को नष्ट करने में सक्षम बनाती है।

फालसा फल में एंथोसायनिन, फ्लेवोनोइड और टैनिन जैसे कई जैवसक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जो इसके महत्वपूर्ण कार्यात्मक गुणों में योगदान करते हैं। इसके अलावा, इस बेरी फल का उपयोग कई दवा अनुप्रयोगों में प्रभावी रूप से किया जा सकता है, जैसे पेट की खराबी को कम करना, आंतों के संक्रमण का इलाज करना, खांसी को कम करना और दस्त का उपचार करना।

फालसा में पाए जाने वाले जैवसक्रिय यौगिक पौधे के विभिन्न हिस्सों में मौजूद होते हैं और शोध से पता चलता है कि ये घटक एंटीऑक्सीडेंट, एंटीडायबिटिक, रेडियोप्रोटेक्टिव, जीवाणुरोधी, कैंसर रोधी और एंटी-हाइपरलिपिडेमिया जैसी गतिविधियों में योगदान करते हैं। फालसा के सीमित उपयोग का मुख्य कारण इसकी कम जीवन अवधि और छोटे आकार के फलों को माना जाता है, जबकि इसके पौधों में मौजूद जैवसक्रिय यौगिकों की कार्यात्मक क्षमता अधिक है।

आज फालसा को स्क्वैश, जैम, जूस, पेय और सिरप सहित विभिन्न बिक्री योग्य उत्पादों के रूप में छोटे पैमाने पर संसाधित किया जा रहा है। इसलिए, फालसा पौधे की पोषण संरचना और समग्र गुणवत्ता में सुधार के लिए उन्नत तकनीकों के उपयोग और इसके व्यापक औद्योगिक एवं स्वास्थ्य लाभों को स्पष्ट करने हेतु और अध्ययन की आवश्यकता है। ■

अर्धशुष्क क्षेत्र में चंदन आधारित कृषिवानिकी

संग्राम चव्हाण[1], **गौरी रावले**[2], **वनिता सालुंखे**[3], **विजयसिंह काकडे**[4] और **अमृत मोराडे**[5]

भारतीय चंदन जिसे सफेद चंदन भी कहा जाता है, एक अत्यधिक मूल्यवान और अधिक मांग वाली दृढ़ लकड़ी की प्रजाति है। इसका हार्टवुड सुगंधित तेलों और सैंटालोल के लिए प्रसिद्ध है, जो इसे सबसे महत्वपूर्ण गैर-लकड़ी वन उत्पादों में से एक बनाता है। इसके परिपक्व वृक्षों के हार्टवुड में 2-6% तक तेल और 90% तक सैंटालोल पाया जाता है। चंदन औसतन 1-2.4 मीटर चौड़ा और 12-15 मीटर ऊँचा होता है। यह एक अर्ध-परजीवी प्रजाति है और पानी तथा पोषक तत्वों के लिए अन्य पौधों पर निर्भर रहता है। विभिन्न प्रकार की मृदा और प्रतिकूल परिस्थितियों में इसकी अनुकूलन क्षमता तथा उच्च आर्थिक मूल्य इसे कृषिवानिकी के लिए एक आकर्षक विकल्प बनाते हैं।

भारत में चंदन उत्पादन में पिछले कुछ दशकों में कमी दर्ज की गयी है। इसके प्रमुख कारण हैं: सैंडल स्पाइक रोग, अनियंत्रित कटाई और तस्करी, गलत पोषिता प्रजातियों का चयन, अनुपयुक्त रोपण ज्यामिति, अत्यधिक पौधों की घनता, निम्न गुणवत्ता वाली पौध सामग्री और कृषिवानिकी में उचित कृषि कार्य प्रणालियों की कमी। परिणामस्वरूप, चंदन की आपूर्ति में कमी आई है, जबकि मांग लगातार बढ़ती जा रही है, जिससे इसकी कीमतें अत्यधिक बढ़ गई हैं।

इस बढ़ती मांग और उच्च मूल्य के कारण अनेक किसान अब चंदन की खेती के लिए प्रेरित हो रहे हैं। हालाँकि, कई निजी नर्सरी और सलाहकार से किसानों को सही जानकारी प्राप्त नहीं हो रही है। किसानों को सुरक्षित और लाभदायक चंदन की खेती के लिए यह लेख नर्सरी तकनीक, पोषिता पौधों का चयन, रोपण दूरी और बाद की देखभाल जैसी सही और वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करता है।

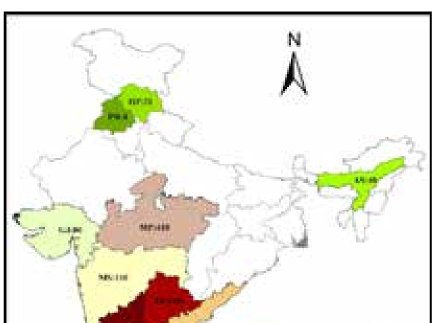

भारत में चंदन का वितरण

वितरण

प्राकृतिक रूप से भारतीय चंदन लगभग 9,600 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। इसका वितरण मुख्य रूप से दक्कन क्षेत्र के पर्णपाती वनों में केंद्रित है। चंदन की अधिकांश प्राकृतिक आबादी दक्षिण भारतीय राज्यों- कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में पाई जाती है, जो कुल प्राकृतिक वितरण का 90% से अधिक हिस्सा है। भारत में चंदन का कुल क्षेत्रफल लगभग 17,100 हैक्टर था, जबकि कुछ अन्य रिपोर्टों में यह क्षेत्रफल 23,100 हैक्टर तक बताया गया है।

[1,3] वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]यंग रिसर्च फेलो, [4,5]वैज्ञानिक
भाकृअनुप- राष्ट्रीय अजैविक तनाव प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र

वर्तमान में भारत के कई गैर-पारंपरिक राज्यों – जैसे मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, पश्चिम बंगाल और असोम में भी चंदन की वानिकी (वनीकरण खेती) की जा रही है।

जलवायु एवं मृदा

चंदन समुद्र तल से 1800 मीटर तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में उग सकता है और मध्यम वर्षा (600-1600 मि.मी) वाले क्षेत्रों में अच्छे से पनपता है। यह लंबे समय तक शुष्क जलवायु को सहन करने में सक्षम है। चंदन विभिन्न प्रकार की मृदा में उगता है, जैसे रेत, चिकनी मृदा, दोमट, लेटराइट और काली कपास मृदा।

आयरन-समृद्ध दोमट मृदा इसके लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती है। हालांकि, लाल, पथरीली या चट्टानी मृदा वाले शुष्क क्षेत्रों में चंदन में तेल की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसकी अच्छी वृद्धि और तेल उत्पादन के लिए अच्छी जल निकासी वाली मृदा अनिवार्य है।

नर्सरी तकनीक

चंदन को बीज, कलम अथवा टिशू कल्चर द्वारा उगाया जा सकता है। यह वृक्ष वर्ष में दो बार (मार्च-मई तथा सितंबर-दिसंबर) फल देता है। अच्छे हार्टवुड उत्पादन के लिए बीज केवल केरल, तमिलनाडु और कर्नाटक के वन विभागों से, मध्यम या परिपक्व (20-30 वर्ष पुराने) वृक्षों से ही प्राप्त करें। बीज को ताजे फलों से निकालें, गूदा साफ करें, छाया में सुखाएँ और कवकनाशी से उपचारित करें।

बीज उपचार और पौध तैयार करने की तकनीक

चंदन के बीजों में सख्त खोल और अपरिपक्व भ्रूण के कारण अंकुरण में देरी होती है। इसलिए बुआई से पूर्व बीज उपचार आवश्यक है। बीजों को जिब्रेलिक अम्ल (जीए - 500 पीपीएम) के घोल में 12-18 घंटे भिगोने से 70% से अधिक अंकुरण प्राप्त किया जा सकता है।

चंदन लगाने के बाद उपयुक्त पोषिता पौधों को वैकल्पिक पैटर्न या वैकल्पिक पंक्तियों में लगाया जा सकता है। रोपण के समय उर्वरक की मात्रा पौधों के आकार और आयु के अनुसार भिन्न होती है। प्रति वर्ष 15-20 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ 30-50 ग्राम नाइट्रोजन, 25-50 ग्राम P_2O_5 और 30-50 ग्राम K_2O देने की सिफारिश की जाती है।

चंदन के लिए पोषिता प्रजातियाँ

चंदन में हार्टवुड का विकास पोषिता प्रजाति, पर्यावरणीय परिस्थितियों और उसकी आयु पर निर्भर करता है। उपयुक्त पोषिता वृक्षों की कमी से चंदन पौधों में N, P, K, S, Ca, Mg, Fe, Zn और Cu जैसे पोषक तत्वों की कमी देखी जाती है। चंदन अपने जीवनचक्र में विभिन्न पौधों के साथ हॉस्टोरिया

पौध तैयार करने के चरण

- लाल मिट्टी:काली मिट्टी:गोबर खाद (3:2:1) मिलाकर 3×1 मीटर की उठी हुई क्यारी बनाएँ।
- उपचारित बीज (400 ग्राम) क्यारी में समान रूप से फैलाएँ और ऊपर से 2 सें.मी. मिट्टी डालें। क्यारी को पॉलीथीन से ढककर नमी बनाए रखें। लगभग 22 दिनों में अंकुरण शुरू होता है और 70% तक अंकुरण मिलता है।
- 5-6 पत्तियाँ आने पर पौध को 500 सीसी पॉलीबैग या 300 सीसी हाइकोपॉट में स्थानांतरित करें और साथ में पोषिता पौधा (जैसे लाल चना/मत्स्याक्षी/छुई मुई) लगाएँ। यह कार्य चंदन के 4-6 पत्तियों की अवस्था में करना सबसे उपयुक्त है।
- बहुत जल्दी या बहुत देर से पोषिता लगाने पर चंदन की वृद्धि प्रभावित होती है।
- प्रत्यारोपण के बाद पौध को 5-6 दिन छाया में रखें। पोषिता पौधे की नियमित छँटाई करते रहें ताकि वह ज्यादा न बढ़े।

चंदन बीज के बेहतर अंकुरण के लिए नर्सरी तकनीक

सारणी: चंदन के लिए उपयुक्त अच्छी पोषिता प्रजातियाँ

पोषिता प्रकार	प्रजातियाँ
प्राथमिक (पॉट) पोषिता	अरहर, छुई मुई (नर्सरी चरण), कुल्थी, मत्स्याक्षी, सदाबहार, मूँगफली, उड़द और मूंग, हरियाली, अंजन, स्टायलो, दशरथ, गिनी
मध्यवर्ती पोषिता	सीताफल, पपीता, सहजन, अमरूद, अनार, अगस्ति, नीबू, जंगली सुरू, मेलिया
द्वितीयक/दीर्घ पोषिता	बबूल, आंवला, ग्राफ्टेड इमली, नीम, ग्राफ्टेड आम और बेर, शीशम, कसोद, विलायती बबूल, बेल, कवथ

रोपण तकनीक

चंदन की सफल खेती के लिए उचित रोपण और सही पोषिता पौधों का चयन आवश्यक है। चंदन अपनी जड़ों को फैलाकर पोषिता से जुड़ता है, इसलिए इसे 1.5-3 मीटर दूरी पर पोषिता के पास लगाना लाभकारी है। रोपण हेतु 3×3×3 फुट गड्ढे तैयार करें और बारिश के बाद बीज या कंटेनर में उगे स्वस्थ पौधों को 4×3, 5×5, 6×2.5 या 6×5 मीटर दूरी पर लगाएँ। पोषिता के रूप में अरहर, तुलसी, सदाबहार, दूर्वा, सुरू, मेलिया, अनार, नीबू, अमरूद, अगस्ति एवं आंवला उपयुक्त हैं। सही संयोजन से चंदन की जड़ों को पोषण मिलता है, पौधे मजबूत होते हैं और हार्टवुड की गुणवत्ता एवं दीर्घकालिक आय सुनिश्चित होती है।

छंटाई करते समय सावधानी

- इसे केवल 2-4 वर्ष की अवस्था में करें।
- छोटी उंगली के आकार की शाखाओं या शाखा समूहों की ही छंटाई करें ।
- पेड़ की ऊँचाई को एक-तिहाई से अधिक न घटाएँ।
- कम से कम 40-50% कैनोपी (छत्रछाया) अवश्य सुरक्षित रखें।
- छंटाई के तुरंत बाद फफूंदनाशक और कीटनाशक का छिड़काव करें।

छंटाई उपरांत चंदन का पौधा

(अर्ध-परजीवी संबंध) स्थापित करता है, और अब तक यह संबंध 300 से अधिक पौध प्रजातियों में दर्ज किया जा चुका है। चंदन के लिए निम्न तीन प्रकार के पोषिता पौधे प्रचलित हैं

- **पॉट पोषिता**- छोटे जड़ी-बूटी वर्ग के पौधे, जिन्हें चंदन से 5-15 सें.मी. दूरी पर लगाया जाता है। ये पौधे शुरुआती अवस्था में चंदन की वृद्धि में सहायक होते हैं।
- **मध्यवर्ती पोषिता**- छोटे पेड़ या झाड़ियाँ, प्रायः नाइट्रोजन-स्थिरीकरण करने वाली प्रजातियाँ, जिन्हें चंदन से लगभग 3 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। ये लगभग 6 वर्षों तक चंदन को सहारा देती हैं।
- **दीर्घकालीन पोषिता**- बड़े वृक्ष, जिन्हें चंदन से 10-12 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। ये कटाई तक चंदन को सहारा देते हैं और उसकी सतत वृद्धि सुनिश्चित करते हैं।

पोषिता और चंदन का आदर्श अनुपात

चंदन के लिए पोषिता का आदर्श अनुपात 1:1 माना जाता है, किंतु आवश्यकता अनुसार 2:1 या 3:1 भी अपनाया जा सकता है। वर्तमान प्रथा में 5×5 मीटर की दूरी पर चार पोषिता पौधे और बीच में एक चंदन का पौधा लगाया जाता है। पोषिता के रूप में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले पौधे तथा गैर-फलीदार व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियाँ लगाने की सिफारिश की जाती है। यदि किसान केवल अनार या नीबू जैसे

चंदन की परजीविता द्वारा प्रभावित नीबू का पौधा

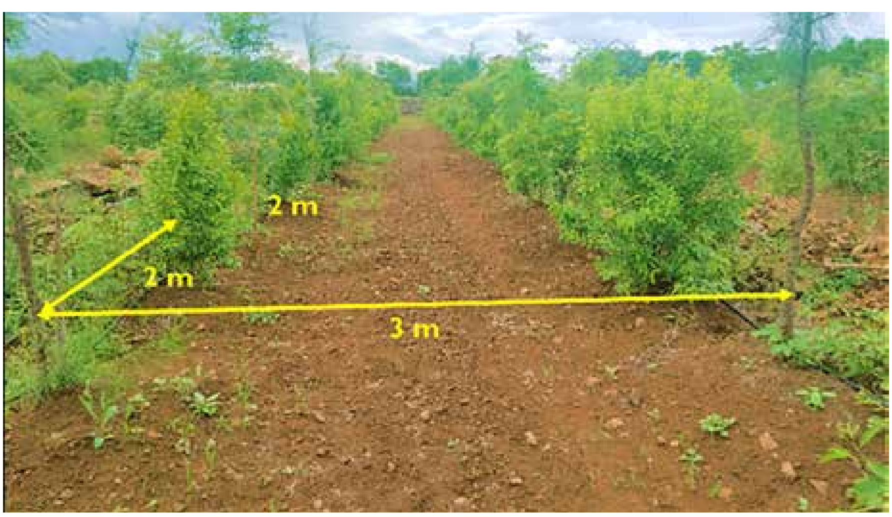

खेत में चंदन की रोपाई का अंतर

कटाई एवं उपज

प्राकृतिक परिस्थितियों में चंदन का वृक्ष सामान्यतः 30 वर्ष की आयु के बाद काटा जाता है। इसकी आर्थिक उपयोगिता हार्टवुड तथा उसमें उपस्थित तेल की मात्रा पर निर्भर करती है। एक परिपक्व वृक्ष से 85-240 कि.ग्रा. तक हार्टवुड प्राप्त हो सकता है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि कृषिवानिकी पद्धति में लगाए गए चंदन को 15 वर्ष की आयु में ही कटाई योग्य माना जा सकता है, जहाँ से लगभग 10-20 किलोग्राम हार्टवुड प्राप्त होता है।

पौधों को पोषिता के रूप में लगाते हैं, तो चंदन 3-4 वर्षों में इन्हें नष्ट कर सकता है। अतः इनके साथ कुछ दीर्घकालीन पोषिता पौधे भी अवश्य लगाएँ, ताकि चंदन और पोषिता दोनों का संतुलित विकास हो और खेत में दीर्घकालिक लाभ सुनिश्चित हो।

देखभाल

चंदन से उच्च गुणवत्ता वाला नक्काशी योग्य लट्ठा प्राप्त करने के लिए सीधा और एकमुखी तना विकसित होना आवश्यक है। इसके लिए पहले 3-4 वर्षों में प्रारंभिक छंटाई की जाती है। हार्टवुड का विकास जड़ों और तने के निचले हिस्से से शुरू होकर धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ता है। ध्यान रखें कि 3-4 वर्ष से अधिक पुराने वृक्षों में छंटाई प्रभावी नहीं रहती और इससे वृक्ष की वृद्धि को नुकसान हो सकता है। ■

औषधीय पादप गुग्गुल का संरक्षण

स्वराज्य लक्ष्मी नायक, मनीष कुमार सुथार, मनीष कुमार मित्तल, गणेश खड़के और **रोहन सरकार**

गुग्गुल एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है, जो अपने प्रमुख बायोएक्टिव कंपाउंड 'गुग्गुलस्टेरोन' के लिए प्रसिद्ध है। यह प्रजाति वर्तमान में गंभीर संकट का सामना कर रही है, जिसके मुख्य कारण हैं – धीमी वृद्धि, कमजोर बीज उत्पादन व अंकुरण, असंगत रेजिन दोहन तकनीक, और अन्य विदेशी प्रजातियों का प्रभाव। आयुर्वेदिक चिकित्सा में इसका औषधीय व आर्थिक महत्व अत्यधिक है, लेकिन अत्यधिक दोहन के कारण इसे IUCN रेड लिस्ट में गंभीर रूप से संकटग्रस्त घोषित किया गया है। इस गिरावट को रोकने हेतु राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, नई दिल्ली तथा औषधीय एवं सगंधीय पादप अनुसंधान निदेशालय, आणंद, गुजरात द्वारा संरक्षण एवं संवर्धन के विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं। इनमें सर्वेक्षण, वितरण मानचित्रण, जर्मप्लाज्म संरक्षण, टिशू कल्चर, अच्छी कृषि पद्धतियाँ, वैज्ञानिक रेजिन दोहन पद्धति तथा उन्नत किस्मों की पहचान शामिल हैं।

गुग्गुल, जिसे भारतीय बेडेलियम भी कहा जाता है, मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी छाल से प्राप्त गोंद 'गुग्गुल' का उपयोग आयुर्वेदिक, यूनानी और आधुनिक चिकित्सा में अनेक रोगों जैसे मोटापा, गठिया, हाइपरलिपिडेमिया, थायरॉइड असंतुलन और पुराने घावों के उपचार में किया जाता है।

यह गोंद कृमिनाशक, जीवाणुरोधी और चयापचय सुधारक गुणों से भरपूर होता है। इसके अतिरिक्त, इसकी मांग सुगंधित धूप एवं अगरबत्ती निर्माण में भी रहती है। भारत में गुग्गुल की वार्षिक मांग 1,000 से 2,000 टन तक है, लेकिन उत्पादन की सीमितता के कारण इसकी आपूर्ति का बड़ा हिस्सा आयात से पूरा किया जाता है। हाल के वर्षों में हर्बल दवाइओं और न्यूट्रास्यूटिकल्स की बढ़ती वैश्विक मांग के कारण इसकी आर्थिक महत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

भाकृअनुप-औषधीय एवं सगंधीय पादप अनुसंधान निदेशालय, आणंद, गुजरात

वानस्पतिक वर्णन

गुग्गुल एक छोटे आकार का कांटेदार झाड़ीनुमा पौधा है, जिसकी छाल भूरी या पीले रंग की होती है और परतों में झड़ती है। सर्दियों में यह सुषुप्तावस्था में जाकर अपनी सभी पत्तियाँ गिरा देता है। इसके युवा भाग ग्रंथियुक्त और रोएंदार होते हैं। इसकी पत्तियाँ वैकल्पिक या गुच्छेदार होती हैं, जो 1-3 पत्रकों से युक्त होती हैं। पत्तियों का आकार अंडाकार तथा किनारे आरीदार होते हैं। इसके छोटे भूरे-लाल फूल 2-3 के समूहों में लगते हैं, जिनमें घंटाकार ग्रंथियुक्त कैलिक्स और चौड़ी रेखाकार पंखुड़ियाँ होती हैं। इसके 8-10 केसरों में से कुछ लंबे और कुछ छोटे होते हैं। अंडाशय दीर्घवृत्ताकार होता है तथा फल एक गुठलीदार लाल रंग का ड्रूप होता है, जिसमें 2-3 कक्षीय गुठलियाँ होती हैं। इसका गोंद-रेजिन पौधे की छाल में उपस्थित रेजिन डक्ट्स से प्राप्त होता है, जो इस पौधे की विशिष्ट पहचान है।

पौधे का तना

पौधे की पत्ती

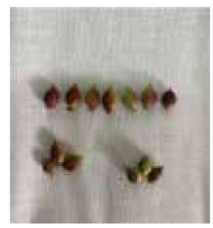

गुग्गुल का फल

बीज

प्रवर्धन

गुग्गुल का प्रवर्धन बीजों के माध्यम से किया जा सकता है, यद्यपि कठोर बीज आवरण के कारण इनका अंकुरण प्रतिशत अत्यंत कम होता है। प्रवर्धन के लिए काले रंग के परिपक्व बीज सबसे उपयुक्त माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त, गुग्गुल का प्रवर्धन हार्मोन उपचारित तना कटिंग्स द्वारा भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। लगभग 300 मि.मी. लंबाई और 15 मि.मी. व्यास वाली कटिंग्स में 1,000 पीपीएम आईबीए उपचार से सर्वाधिक जड़ गठन देखा गया है।

इसके साथ ही, गुग्गुल का प्रवर्धन एयर लेयरिंग तकनीक द्वारा भी प्रभावी रूप से किया जा सकता है। प्री-मानसून और मध्य-मानसून का समय एयर लेयरिंग की अधिकतम (लगभग 100%) सफलता के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

प्रवर्धन के लिए कलम की तैयारी

कटिंग द्वारा गुग्गुल का प्रवर्धन

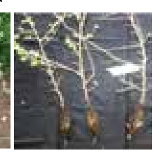

एयर लेयरिंग द्वारा तैयार पौधा

टैपिंग विधियाँ और संभावित उपज

गुग्गुल रेजिन के संग्रह हेतु सामान्यतः 8-10 वर्ष पुराने पौधों की परिपक्व शाखाओं

की छाल पर चीरे लगाए जाते हैं। सर्दियों (नवंबर से फरवरी) के दौरान टैपिंग से सर्वाधिक उपज प्राप्त होती है। पारंपरिक टैपिंग विधियाँ पौधे को दीर्घकालिक क्षति पहुँचा सकती हैं, जबकि आधुनिक तकनीकें जैसे एथेनॉल प्रेरित टैपिंग तथा मिची गोललेज नाइफ के साथ एथीफॉन (450 मि.ग्रा.) का प्रयोग अधिक रेजिन उत्पादन (लगभग 300-500 ग्राम प्रति पौधा) और तेज घाव भराव में सहायक सिद्ध होती हैं।

प्राकृतिक परिस्थितियों में एक पौधे से प्रतिवर्ष औसतन 100-200 ग्राम रेजिन प्राप्त होता है। यदि एक हैक्टर क्षेत्र में 400-600 पौधे लगाए जाएँ, तो सातवें वर्ष से 100-250 किलोग्राम रेजिन उत्पादन संभव है। हालांकि, गुग्गुल में मिलावट की आशंका बनी रहती है, विशेषकर सलाई गुग्गुल के गोंद-रेजिन के साथ। मिलावट की पहचान हेतु HPTLC तकनीक का उपयोग किया जाता है, क्योंकि केवल असली गुग्गुल रेजिन में गुग्गुलस्टेरोन E और Z पाए जाते हैं।

औषधीय उपयोग और रासायनिक संरचना

ओलियो गम रेजिन

गुग्गुल से प्राप्त रेजिन (ओलियो-गम) आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक अत्यंत प्रभावी औषधीय पदार्थ के रूप में प्रयुक्त होती है। इसका उपयोग मुख्यतः गठिया, उच्च कोलेस्ट्रॉल, मोटापा, त्वचा रोगों तथा पाचन संबंधी विकारों के उपचार में किया जाता है। गुग्गुल में सूजनरोधी, हाइपोलिपिडेमिक, जीवाणुरोधी और चयापचय सुधारक गुण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। पारंपरिक चिकित्सा में इसका प्रयोग टॉन्सिल, गले के संक्रमण, फीवर, क्षय रोग, अल्सर तथा श्वसन विकारों में भी लाभदायक माना जाता है। यह मूत्रवर्धक और कफ निस्सारक गुणों से भी युक्त है। रासायनिक दृष्टि से, गुग्गुल रेजिन में लगभग 61% रेजिन, 29% गोंद तथा 1.5-3% आवश्यक तेल पाए जाते हैं। इसमें प्रमुख जैव सक्रिय यौगिक जैसे Z-और E-गुग्गुलस्टेरोन, फ्लेवोनॉइड्स, लिगनान्स तथा डाइटरपेनॉयड्स उपस्थित होते हैं, जो इसे विशिष्ट औषधीय गुण प्रदान करते हैं। विशेष रूप से, गुग्गुलस्टेरोन कोलेस्ट्रॉल चयापचय को नियंत्रित करने वाले रिसेप्टर्स पर प्रभाव डालते हैं, जिससे यह हृदय संबंधी रोगों की रोकथाम और उपचार में उपयोगी सिद्ध होता है। आधुनिक हर्बल औषधियों और न्यूट्रास्यूटिकल उत्पादों में गुग्गुलस्टेरोन आधारित फॉर्मूलेशन का व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है।

विलुप्ति का संकट

गुग्गुल भारत के शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में अपने प्राकृतिक आवास से तीव्र गति से लुप्त हो रहा है। अत्यधिक रेजिन दोहन, अस्थिर टैपिंग विधियाँ, वनों की कटाई, शहरीकरण और जलवायु परिवर्तन इसके प्राकृतिक पुनरुत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहे हैं। आवास क्षरण और बीज अंकुरण की कमी के कारण इसकी जंगली आबादी निरंतर घट रही है। IUCN रेड लिस्ट (2022) के अनुसार, गुग्गुल को "अत्यधिक संकटग्रस्त" श्रेणी में रखा गया है। संरक्षण के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने टैपिंग पर अनुमति प्रणाली लागू की है तथा राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड द्वारा औषधीय पौध संरक्षण क्षेत्र स्थापित किए जा रहे हैं। इसके साथ ही, भाकृअनुप- औषधीय एवं सगंधीय पादप अनुसंधान निदेशालय, आणंद (गुजरात) जैसे संस्थान ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर), उन्नत प्रजनन विधियाँ और उच्च रेजिन वाले क्लोन विकसित कर गुग्गुल के संरक्षण एवं व्यावसायिक खेती को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

गुग्गुल की आर्थिक महत्ता

गुग्गुल एक उच्च मूल्य वाला औषधीय पौधा है, जिसकी रेजिन की कीमत गुणवत्ता के अनुसार ₹1,000 से ₹12,000 प्रति किलोग्राम तक होती है। इसके प्रसंस्करण से होने वाला मूल्य संवर्धन ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न करता है। आधुनिक तकनीकों जैसे CO_2 और एथेनॉल निष्कर्षण से उत्पाद की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार होता है और स्थानीय समुदायों की आय में वृद्धि होती है। जब स्थानीय संग्रहकर्ता स्वयं प्रसंस्करण और विपणन में भाग लेते हैं, तो उनकी बाजार हिस्सेदारी 30% से बढ़कर 70% तक हो सकती है। शुष्क क्षेत्रों में टैपिंग अवधि के दौरान एक ग्रामीण परिवार को गुग्गुल से ₹10,000-₹25,000 तक की अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। महिला स्वयं सहायता समूह नर्सरी प्रबंधन, प्रसंस्करण और पैकेजिंग में भाग लेकर आत्मनिर्भरता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं, जिससे यह पौधा न केवल औषधीय बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रहा है।

गुग्गुल जर्मप्लाज्म ब्लॉक का संरक्षण

संरक्षण प्रयास

गुग्गुल की संकटग्रस्त स्थिति को देखते हुए इसके संरक्षण और पुनर्स्थापना के लिए प्रभावी कदम उठाने की जरूरत है। इसके लिए नियंत्रित खेती, बीज बैंक संरक्षण, उन्नत कृषि पद्धतियाँ और ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) जैसी पहल की जा रही हैं। सरकार द्वारा शोध संस्थानों के सहयोग से वैज्ञानिक टैपिंग तकनीकों को बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि बिना नुकसान के रेजिन निकाला जा सके।

ग्रामीण समुदायों की भागीदारी, जागरूकता कार्यक्रम और कृषि वानिकी प्रणाली के जरिए किसानों को गुग्गुल की खेती के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे जंगली पौधों पर दबाव कम हो। इसके लिए 75% तक की सब्सिडी देती है, और कई राज्यों ने क्लस्टर विकास एवं खरीद समझौते भी लागू किए हैं।

टिकाऊ दोहन, प्राकृतिक आवासों की पुनर्बहाली और कठोर संग्रहण नियमों की मदद से गुग्गुल की रक्षा की जा रही है। DBT और MoEFCC ने रिमोट सेंसिंग और GIS तकनीकों से इसके आवासों की निगरानी शुरू की है। गुग्गुल का संरक्षण सिर्फ एक पौधे को नहीं, बल्कि पारंपरिक ज्ञान, स्थानीय आजीविका और पर्यावरण संतुलन को बचाने का प्रयास है।

पैशन फ्रूट की लाभकारी खेती

नेहा धीमान[1], **इंद्र देव**[2], **राजेश्वर सिंह चंदेल**[3] और **जया चौधरी**[4]

भारत में विविध फसलों के साथ-साथ सब्जियों और फलों की खेती भी बड़े पैमाने पर की जाती है। इन्हीं में से एक है पैशन फ्रूट- एक उष्णकटिबंधीय फल जिसकी उत्पत्ति दक्षिण अमेरिका से मानी जाती है। अपने औषधीय और पोषण गुणों के कारण अब इसकी खेती भारत के कई राज्यों में की जा रही है। हिंदी में इसे कृष्णा फल के नाम से भी जाना जाता है। पैशन फ्रूट का वैज्ञानिक नाम पैसीफ्लोरा एडुलिस है। इसके दो प्रमुख प्रकार पाए जाते हैं- बैंगनी रंग का पैसीफ्लोरा एडुलिस एफ. एडुलिस और पीले रंग का पैसीफ्लोरा एडुलिस एफ. फ्लाविकार्पा। इस पौधे की बेलनुमा लताएँ होती हैं, जिन पर अंडाकार फल लगते हैं। फलों का रंग किस्म के अनुसार पीला या बैंगनी हो सकता है। मीठे-खट्टे स्वाद और औषधीय गुणों के कारण पैशन फ्रूट न केवल उपभोक्ताओं में लोकप्रिय हो रहा है, बल्कि किसानों के लिए भी आय का एक नया स्रोत बनकर उभर रहा है।

पैशन फ्रूट (पैसीफ्लोरा एडुलिस), फैमिली पैसीफ्लोरेसीयी की प्रजाति है, जिसकी मूल उत्पत्ति ब्राजील से मानी जाती है। भारत में यह फल पश्चिमी घाट के कई क्षेत्रों - जैसे नीलगिरी, वायनाड, कोडइकनाल, कूर्ग और मालाबार - के साथ-साथ हिमाचल प्रदेश और पूर्वोत्तर राज्यों जैसे मणिपुर, नगालैंड तथा मिजोरम में जंगली रूप से पाया जाता है।

यह फल अपने विशिष्ट रस और सुगंध के लिए अत्यधिक मूल्यवान है। पैशन फ्रूट से उच्च गुणवत्ता वाले स्क्वॉश, जूस, आइसक्रीम फ्लेवर और अन्य प्रसंस्करित उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जो बाजार में काफी लोकप्रिय हैं।

[1]सहायक प्रोफेसर (फल विज्ञान), [4]वैज्ञानिक (प्लांट पैथोलॉजी), कृषि विज्ञान केंद्र चंबा, सरू, [2]विस्तार शिक्षा निदेशक, [3]कुलपति, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन

पैशन फ्रूट की बेल उथली जड़ वाली, वुडी (लकड़ीदार), बारहमासी और टेंड्रिल के माध्यम से चढ़ने वाली होती है। प्रत्येक नई शाखा पर एक सुगंधित फूल उत्पन्न होता है, जिसका आकार लगभग 5 से 7.5 सेंटीमीटर तक होता है। फल अंडाकार होता है, जिसमें लगभग 250 छोटे, कठोर, गहरे भूरे या काले रंग के बीज पाए जाते हैं। इसकी आकर्षक बनावट और स्वाद इसे एक उच्च मूल्य वाली फसल बनाते हैं।

प्रमुख प्रजातियाँ

भारत में पैशन फ्रूट की कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से कुछ व्यावसायिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

भारत में व्यावसायिक महत्वपूर्णता वाली प्रजातियाँ हैं:

बीज प्रसारण

बेहतर उपज और गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए, बीज स्वस्थ और उच्च उत्पादक बेलों से प्राप्त किए जाते हैं। फलों के गूदे को निष्कर्षण के बाद लगभग 72 घंटे तक आस्थित किया जाता है, ताकि बीज आसानी से अलग हो सकें। बीजों को मार्च-अप्रैल के दौरान अच्छी तरह तैयार किए गए नर्सरी क्यारियों में बोया जाता है। जब पौधों में 4-6 पत्तियाँ विकसित हो जाती हैं, तब उन्हें 10×22 सें.मी. आकार के पॉलीबैग में प्रतिरोपित किया जाता है। पॉलीबैग में मिट्टी, गोबर की खाद और रेत को 2:1:1 के अनुपात में मिलाया जाता है। लगभग तीन महीने बाद पौधे मुख्य खेत में रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं।

ट्रेनिंग

बेलों को पौधे के आधार से ट्रेलिस की ऊँचाई तक एकल, बिना शाखाओं वाला मुख्य तना विकसित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। ट्रेलिस की ऊँचाई तक पहुँचने पर, दो प्राथमिक बेलों को विपरीत दिशाओं में फैलाया जाता है। इन प्राथमिक बेलों से निकलने वाली द्वितीयक बेलों को तारों से नीचे की ओर लटकाकर प्रशिक्षित किया जाता है और रास्ते में आने वाले टेंड्रिल को समय-समय पर हटा दिया जाता है। यही बेलें भविष्य में फल देने वाले मुख्य भाग बनती हैं। सबसे किफायती और प्रभावी प्रशिक्षण प्रणाली निफिन प्रणाली मानी जाती है। इसमें लगभग 2.5 मीटर लंबे खंभे को 3 मीटर की दूरी पर खड़ा किया जाता है तथा उन्हें 9 से 11 गेज की चार तारों से जोड़ा जाता है।

- पैशन फ्रूट (पैसीफ्लोरा एडुलिस)
- पर्पल पैशन फ्रूट (पैसीफ्लोरा एडुलिस एफ. एडुलिस)
- येलो पैशन फ्रूट (पैसीफ्लोरा एडुलिस एफ. फ्लाविकार्पा)
- कावेरी हाइब्रिड पैशन फ्रूट (पर्पल पैशन फ्रूट x येलो पैशन फ्रूट)

कावेरी संकर

यह किस्म अधिक उपज और उत्कृष्ट फल गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध है। प्रत्येक फल का औसत वजन लगभग 85 से 110 ग्राम तक होता है। यह किस्म कॉलर रॉट, विल्ट और नेमाटोड के प्रति क्षेत्रीय सहनशीलता रखती है, जिससे इसकी व्यावसायिक खेती लाभदायक सिद्ध होती है।

पौध प्रवर्धन

पैशन फ्रूट का प्रवर्धन मुख्यतः बीज और कलमों द्वारा किया जाता है। बीज से तैयार पौधे कलमों की तुलना में अधिक सशक्त होते हैं, इसलिए किसान प्रायः बीजों से पौध तैयार करना पसंद करते हैं।

पौधों के बीच की दूरी और रोपण

प्रशिक्षण प्रणाली के प्रकार और विविधता के आधार पर अंतर अलग-अलग होगा।

प्रणाली	दूरी	रोपण घनत्व
निफिन	2 मीटर x 3 मीटर	1666 पौधे/है.
बोवर	3 मीटर x 3 मीटर	1110 पौधे/है.

भूमि की तैयारी

मुख्य खेत की तैयारी के लिए 45 सें.मी. × 45 सें.मी. × 45 सें.मी. आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं। पहाड़ी ढलानों और मैदानों में गड्ढों की दूरी क्रमशः 3 मीटर × 2 मीटर रखी जाती है। प्रत्येक गड्ढे को शीर्ष मिट्टी और गोबर की खाद के तीन भागों के मिश्रण से भरा जाता है। रोपण का कार्य सामान्यतः मई-जून में, अर्थात् मानसून की शुरुआत के समय किया जाता है।

प्रूनिंग

पैशन फ्रूट वर्तमान मौसम की नई वृद्धि पर फल देता है। इसलिए फसल की कटाई के बाद बेलों की लेटरल शाखाओं को 4-5 कलियों तक काटना आवश्यक होता है। सामान्यतः अप्रैल और दिसंबर में फसल कटाई के बाद प्रूनिंग की जाती है, जिससे नई वृद्धि और अगले चक्र की फलधारिता सुनिश्चित होती है।

जलवायु और मृदा

पैशन फ्रूट की सफल खेती के लिए उष्णकटिबंधीय से लेकर अर्ध-उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। यह फसल 1000 से 2500 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में 2000 मीटर की ऊँचाई तक अच्छी तरह विकसित होती है। पौधों की वृद्धि और फूल-फल उत्पादन के लिए 20° से 30° सेल्सियस तापमान आदर्श होता है, जबकि 15° सेल्सियस से कम तापमान पर वनस्पति वृद्धि और पुष्पण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह फसल हल्की रेतीली दोमट मिट्टी में सर्वोत्तम रूप से पनपती है, जिसमें जल निकास अच्छा हो और मिट्टी का पीएच स्तर 6.0 से 7.0 के बीच हो।

सारणी: पर्पल और येलो पैशन फ्रूट का विवरण

पर्पल पैशन फ्रूट	येलो पैशन फ्रूट
यह किस्म ऊँचाई वाले ठंडे क्षेत्रों में अधिक उत्पादक होती है।	यह किस्म निचले, गर्म और आर्द्र क्षेत्रों में अच्छी उपज देती है।
फल 4-5 सें.मी. आकार के होते हैं, पके होने पर गहरे बैंगनी रंग के और प्रत्येक का वजन लगभग 35-45 ग्राम होता है।	फल आकार में बड़े (लगभग 60 ग्राम) होते हैं और पकने पर सुनहरे पीले रंग के हो जाते हैं।
बीज काले रंग के होते हैं।	बीज भूरे रंग के होते हैं।
यह किस्म पत्तियों पर धब्बे, कॉलर सड़न, थ्रिप्स तथा नेमाटोड के प्रकोप के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है।	यह किस्म पत्तियों के धब्बों, मुरझान, थ्रिप्स तथा नेमाटोड के प्रति अपेक्षाकृत सहनशील होती है।

गुणों से भरपूर फल

खाद प्रबंधन

रोपण के पहले वर्ष में प्रति बेल 10 किलोग्राम एफवाइएम देने की अनुशंसा की जाती है। दूसरे वर्ष से यह मात्रा बढ़ाकर 15 किलोग्राम प्रति बेल कर दी जाती है।

एफवाइएम और वर्मीकम्पोस्ट को 4:1 या 3:1 के अनुपात में मिलाकर देना सर्वोत्तम परिणाम मिलता है। इसके साथ नीम की खली का प्रयोग भी पौधों की वृद्धि के लिए लाभकारी होता है।

हालाँकि वर्मीकम्पोस्ट की सीमित उपलब्धता के कारण अधिकांश किसान इसे नियमित रूप से नहीं उपयोग करते। खाद डालने का उपयुक्त समय फरवरी-मार्च माना जाता है।

उपज

पैशन फ्रूट की बेलें रोपण के लगभग 10 महीने बाद फल देना शुरू करती हैं, जबकि 16-18 महीने में उत्पादन अपने चरम पर पहुँचता है। फलने की दो मुख्य ऋतुएँ होती हैं- अगस्त से दिसंबर, और मार्च से मई तक। फल को परिपक्व होने में 80-85 दिन लगते हैं। औसतन, पर्पल किस्म से 8-10 टन प्रति हैक्टर, जबकि कावेरी संकर किस्म से 16-20 टन प्रति हैक्टर तक की पैदावार प्राप्त होती है। प्रत्येक बेल से सामान्यतः 7-9 किलोग्राम या लगभग 200-250 फल प्रतिवर्ष की औसत उपज मिलती है।

सफेद और पीली ग्लैडियोलस किस्मों का उत्पादन

एडिगा अमला, किशन स्वरूप, कंवर पाल सिंह, पांचाल संगमेश और पैडी रोशनी

ग्लैडियोलस, भारत में सबसे मूल्यवान कर्तित फूलों में से एक है, जिसे इसके जीवंत रंगों और लंबी, आकर्षक स्पाइक्स के लिए जाना जाता है। इसकी व्यावसायिक खेती मुख्य रूप से कलिम्पोंग, श्रीनगर, नैनीताल और गाजियाबाद जैसे क्षेत्रों में की जाती है। इसका उत्पादन लगभग 11.85 हजार हैक्टर क्षेत्र में फैला हुआ है जिससे प्रतिवर्ष लगभग 106 करोड़ कर्तित फूलों का उत्पादन होता है। भारतीय परिस्थितियों में ग्लैडियोलस की सफेद और पीली किस्में सबसे उपयुक्त मानी जाती हैं। उत्पादन में सफेद रंग की किस्में लगभग 60% और पीली किस्में लगभग 20% योगदान देती हैं। ये दोनों ही किस्में गुलदस्तों, सजावट तथा धार्मिक समारोहों में विशेष रूप से पसंद की जाती हैं। इनके स्पाइक्स लंबे समय तक ताजा रहते हैं और इन्हें बाजार में उच्च मूल्य प्राप्त होता है। इस प्रकार, ग्लैडियोलस की खेती किसानों के लिए विशाल उद्यमशीलता क्षमता प्रदान करती है और उन्हें आर्थिक रूप से लाभान्वित करती है।

भारत के सार्वजनिक संस्थानों ने ग्लैडियोलस की कई उन्नत किस्में विकसित की हैं। इनमें विशेष रूप से सफेद और पीली किस्में शामिल हैं, जो विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में उत्कृष्ट प्रदर्शन करती हैं। इन किस्मों की उच्च उत्पादकता, लंबा फूलदान-जीवन और बाजार में उच्च कीमत मिलने की वजह से ये किसानों और उद्यमियों के लिए आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक लाभदायक सिद्ध होती हैं।

पुष्प एवं भूदृश्य निर्माण संभाग, भाकृअनुप - भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-11001

रोपण सामग्री की उपलब्धता

ग्लैडियोलस की रोपण सामग्री (कॉर्म्स) विभिन्न सार्वजनिक अनुसंधान संस्थानों जैसे-भाकृअनुसं (नई दिल्ली), आईआईएचआर (बेंगलुरु), आईएचबीटी (पालमपुर), एमपीकेवी (राहुरी), वाईएसपीयूएचएफ (सोलन), एसकेयूएएसटी (श्रीनगर) से प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, यह सामग्री प्रगतिशील किसानों तथा निजी आपूर्तिकर्ताओं से भी उपलब्ध होती है।

प्रसार

भारत में फूलों की खेती को बढ़ावा देने वाली प्रमुख एजेंसियों में राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (NHB), मिशन इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ हॉर्टिकल्चर (MIDH), NABARD, SFAC और APEDA शामिल हैं। इसके अलावा, राज्य बागवानी विभाग और राष्ट्रीयकृत तथा निजी बैंक भी किसानों और उद्यमियों को 30-50% तक सब्सिडी या ऋण प्रदान करते हैं। सफेद और पीले रंग की ग्लैडियोलस किस्में किसानों और लघु उद्यमियों के लिए आर्थिक रूप से अत्यंत लाभदायक हैं। उन्नत खेती, कटाई के बाद प्रबंधन और पोषण रणनीतियों के सही उपयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यह न केवल कृषि आय बढ़ाने में मदद करता है, बल्कि भारत के पुष्प उद्योग के विकास में भी योगदान देता है।

वैज्ञानिक सस्य क्रियाएं

जलवायु

ग्लैडियोलस पुष्प हल्की जलवायु में सबसे अच्छी तरह उगता है। इसकी आदर्श तापमान सीमा 20-25°C है, जबकि 6°C से कम तापमान पौधों को ठंड से नुकसान पहुँचा सकता है। मृदा का तापमान कम से कम 10°C होना चाहिए और प्रतिदिन कम से कम 80% सूर्य का प्रकाश पौधों के विकास

धन्वंतरि

उर्वरक प्रबंधन

इससे पौधों की ऊँचाई, पत्तियों की संख्या, स्पाइक की लंबाई और फूलों की गुणवत्ता बढ़ती है। इसके लिए 75% RDF, 1 कि.ग्रा./मी. FYM, 0.5 कि.ग्रा./मी. वर्मीकम्पोस्ट और बायो-इनोकुलेंट-संक्रमित कॉर्म का उपयोग किया जा सकता है। जैव-उर्वरक (एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम, PSB / 0.5 कि.ग्रा./मी.) के साथ ह्यूमिक एसिड (3 मि.ली.) मिलाकर मिश्रित एनपीके (17:17:17) देने से कली अंकुरित होती है और स्पाइक की गुणवत्ता बेहतर होती है।

और पुष्पण के लिए आवश्यक है। प्रकाश की कमी, खासकर सर्दियों में, फूलों की संख्या और स्पाइक की लंबाई को प्रभावित कर सकती है।

मृदा

मृदा का चयन भी सफल उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। गहरी, भुरभुरी, कार्बनिक पदार्थ से भरपूर मृदा, जिसमें अच्छी जल निकासी हो, ग्लैडियोलस के लिए उपयुक्त मानी जाती है। आदर्श पीएच मान 5.5-6.5 होना चाहिए। अगर EC 2.0 मि.ग्रा./ली. से अधिक या क्लोराइड 110 मि.ग्रा./ली. से अधिक हो तो पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। मृदा में 50 टन/हैक्टर अच्छी तरह सड़ी हुई FYM मिलाने से पीएच संतुलित रहता है और उपज बढ़ती है।

पूसा शांति

शुभांगिनी

स्थान का चयन एवं खेत की तैयारी

ग्लैडियोलस के पौधों को पूर्ण सूर्य प्रकाश पर्याप्त नमी और तेज हवा से सुरक्षा मिलनी चाहिए। खेत की तैयारी रोपण से लगभग दो महीने पहले करनी चाहिए। हरी खाद, जैसे ढैंचा, मूंग या विंटर राई को मृदा में मिलाकर पोषण बढ़ाया जा सकता है। क्यारियाँ 1.6-2.0 मीटर चौड़ी बनाएं और सिंचाई नालियों के लिए 60 सें.मी. दूरी रखें। फसल चक्र और मृदा के सौरीकरण विधि से फ्यूजेरियम विल्ट जैसी रोगों का जोखिम कम होता है।

कंद का चयन और रोपण विधियाँ

स्वस्थ कंद (5-6 सें.मी.) को 0.2% कैप्टॉन या कार्बेण्डाजिम में 60 मिनट भिगोकर रोग नियंत्रण करें। प्रति हैक्टर 1.25-1.50 लाख कंद रोपित किए जाते हैं। मृदा के प्रकार के अनुसार रोपण विधि अलग होती है: रेतीली मृदा में फ्लैटबेड, दोमट मृदा में लकीरें और भारी मृदा में उभरी हुई क्यारियाँ उपयुक्त हैं। पंक्तियों के बीच दूरी 45-60 सें.मी., पौधों के बीच 15 सें.मी. और कंद को 5-8 सें. मी. गहराई में रोपित करें।

रोपण का समय

क्षेत्र के अनुसार रोपण का समय भिन्न होता है। उत्तरी भारत में अक्टूबर-दिसंबर, पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च-अप्रैल और बेंगलुरु या पुणे में जून या अक्टूबर-नवंबर सबसे उपयुक्त समय हैं।

सिंचाई

नियमित सिंचाई करें, लेकिन जलभराव से बचना चाहिए। रेतीली मृदा में 7-10 दिन और भारी मृदा में 10-15 दिनों में सिंचाई पर्याप्त है। ड्रिप इरिगेशन और फर्टिगेशन से पानी और पोषक तत्वों का समान वितरण होता है।

पोषण प्रबंधन

पौधों के पोषण के लिए प्रति हैक्टर 120 कि.ग्रा. N, 150 कि.ग्रा. P_2O_5 और 150 कि.ग्रा. K_2O की सिफारिश की जाती है। नाइट्रोजन को दो हिस्सों में दिया जाता है-एक 4 पत्ती अवस्था में और दूसरा कली बनने की अवस्था में। साथ ही 0.5% $ZnSO_4$, 0.5% $FeSO_4$ और 0.4% बोरिक एसिड का पत्तियों पर छिड़काव करें। समुद्री शैवाल अर्क और यीस्ट अर्क का प्रयोग फूल उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है।

अंतर सस्य क्रियाएं

लंबे स्पाइक वाले पौधों को सहारा देना चाहिए। मृदा चढ़ाना (7-10 सें.मी.) और मल्चिंग से पौधों की स्थिरता बढ़ती है, नमी संरक्षित रहती है और खरपतवार नियंत्रित होते हैं।

सारणी: सफेद और पीले फूलों वाली किस्मों की उपलब्धता

संस्थान	सफेद रंग	पीला रंग
भाकृअनुप-भाकृअनुसं, नई दिल्ली	पूसा शांति, पूसा शुभम, पूसा किरण और पूसा श्वेता	चांदनी, धन्वंतरि
भाकृअनुप-आईआईएचआर, बेंगलुरु	मीरा	पूनम
सीएसआईआर-एनबीआरआई, लखनऊ	मनीषा, मोहिनी	मनहर, गजेल, मुक्ता
जीबीपीयूए एवं टी, पंतनगर	शुभांगिनी	
पीएयू, लुधियाना	-	पंजाब लेमन डिलाइट
एमपीकेवी, राहुरी	श्री गणेश, फूले प्रेरणा	फूले गणेश
बीएचयू, वाराणसी	-	मालवीय कुंदन
विदेशी एवं निजी नर्सरी	स्नो प्रिंसेस, व्हाइट प्रॉस्पेरिटी, व्हाइट फ्रेंडशिप, स्नो डस्ट, सैंसर, अमेरिकन व्हाइट, व्हाइट गॉडेस, व्हाइट लेडी, लिटिल व्हाइट, आर्कटिक क्वीन	येलो स्टोन, रत्ना बटरफ्लाई, जेस्टर, जैक्सन विले गोल्ड, विंक ग्लोरी, नोवालक्स, गोल्ड डस्ट, येलो स्टार, ईस्टाबोनिटा, भद्री, येलो ब्यूटी, लूना, बनानारामा, समर साइन, सिल्विया, स्टार गोल्ड

विकार

ग्लैडियोलस में कुछ शारीरिक विकार मुख्यत: जलवायु, प्रकाश और पोषण की कमी से उत्पन्न होते हैं।

अंधापन आमतौर पर प्रतिकूल जलवायु या प्रकाश की कमी के कारण होता है। वहीं, गिरना और कली सड़ना कैल्शियम की कमी या कमजोर तनों से जुड़ा होता है, जिसे 0.2–0.3% कैल्शियम कार्बोनेट के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है। पत्तियों का झुलसना, जिसे फ्लोराइड चोट कहा जाता है, भी पौधों की उपस्थिति और स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। इसे 5% चूना या मैग्नीशियम सल्फेट के घोल के छिड़काव से कम किया जा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन

ग्लैडियोलस में खरपतवार नियंत्रण रोपण से 1–2 महीने पहले शुरू किया जाता है। इस दौरान खेत की सिंचाई करके खरपतवार के बीजों का अंकुरण प्रोत्साहित किया जाता है। उसके बाद कल्टीवेटर से खेत की जुताई और 2–3 बार हाथ से निराई की जाती है।

ग्लैडियोलस का स्वस्थ पौधा

- **रोपण से पहले:** पेण्डीमेथिलीन, डाययूरॉन, लिनुरॉन, एट्राजीन जैसे जड़ी-बूटीनाशी दवाइओं का उपयोग किया जा सकता है।
- **रोपण के बाद:** आवश्यकतानुसार 2,4-डी और हाथ से निराई करके खरपतवार नियंत्रित किए जा सकते हैं।

सारणी: ग्लैडियोलस के प्रमुख रोगों का प्रबंधन

रोग	नियंत्रण
कंद सड़न	कंदों को 38-40° से. गर्म पानी में 2.5 ग्राम/ली. बेनलेट और कैप्टॉन के साथ 30 मिनटों तक भिगोएँ। जैविक नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा हारजिनियम का छिड़काव करें।
फ्यूजेरियम विल्ट	स्वस्थ कॉर्म का उपयोग करना चाहिए। कॉर्म को गर्म पानी + 2.5 ग्राम/ली. बेनलेट और कैप्टॉन से उपचारित करना चाहिए। मिट्टी को 0.2% कार्बेण्डाजिम से दो सप्ताह में भिगोना चाहिए। संक्रमित कॉर्म नष्ट करना चाहिए।
बोट्राइटिस ग्रे मोल्ड	0.2% कवच एम या डाइथेन एम-45 छिड़काव।
कर्वुलरिया ब्लाइट	0.2% मैंकोजेब का छिड़काव, साप्ताहिक या 10 दिनों में एक बार।
पत्ती धब्बा	0.3% कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या 1 ग्राम/ली. कार्बेण्डाजिम या 2 ग्राम/ली. मैंकोजेब छिड़काव।

सारणी: ग्लैडियोलस के प्रमुख कीटों का प्रबंधन

कीट	नियंत्रण
कर्तनकीट	विषैले चारे (कार्बेरिल 0.1%) का प्रयोग; 10-15 दिनों पर 0.05% मिथाइल पैराथियॉन या क्विनालफॉस का छिड़काव।
बल्ब माइट	कंदों का गर्म पानी (46°C) से उपचार; 0.05% मिथाइल पैराथियॉन या 0.4% डायजिनॉन का छिड़काव; रोपण से पहले स्वच्छता।
एफिड्स और थ्रिप्स	0.1% एसीफेट या मिथाइल डेमेटोन (2-3 बार, 10 दिन अंतराल) का छिड़काव; संक्रमित कंद का 2°C पर 6 सप्ताह भंडारण।
रूट-नॉट नेमाटोड	गर्म पानी उपचार (57.8°C, 30 मिनट); फ्यूराडॉन/कार्बोफ्यूरॉन/नीम की खली का प्रयोग; मैरीगोल्ड फसल चक्र अपनाना लाभकारी है।

कटाई

ग्लैडियोलस के स्पाइक 60–120 दिनों में तैयार होते हैं। कटाई सुबह या शाम में करें, जब पौधे पर कम से कम चार पत्तियाँ बनी हों। स्पाइक को तेज चाकू से काटा जाना चाहिए, और आधार से 2–3 सें.मी. पानी में कटाई करें। स्थानीय बाजारों के लिए कटाई तब करनी चाहिए जब फूलों का शुरुआती रंग दिखने लगे। निर्यात के लिए कटाई तब करें जब आधार फूल पूरी तरह रंग लेने लगे।

सारणी: पुष्पों की ग्रेडिंग

श्रेणी	स्पाइक की लंबाई (सें.मी.)	पुष्पों की संख्या
फैंसी	>107	16
स्पेशल	96-107	14
स्टैण्डर्ड	81-96	12
यूटिलिटी	<81	10

स्पाइक्स की पैकिंग

ग्लैडियोलस के स्पाइक्स को 20 स्पाइक के बंडल में पैक किया जाता है। इसके लिए CFB कार्टन या मेश बैग का उपयोग किया जाता है। पैकिंग के बाद गुणवत्ता बनाए रखने के लिए प्री-कूलिंग 24-48 घंटे और पल्सिंग और फूलदान का उपयोग इन प्रक्रियाओं से फूलों की ताजगी और लंबी आयु सुनिश्चित होती है।

कंदों का उठाव और भंडारण

ग्लैडियोलस के कंद स्पाइक कटाई के

सारणी: ग्लैडियोलस की खेती का आर्थिक विवरण

उत्पादन	मात्रा/हैक्टर	दर (रु.)	आय (रु.)
कंद	2,55,673	5	12,78,367
स्पाइक	2,01,167	7	14,08,167
कुल सकल आय			26,86,533
कुल लागत			10,52,305
शुद्ध लाभ			16,34,228
लाभ : लागत अनुपात			2.55

सारणी: ग्लैडियोलस के उत्पादन में सस्य क्रियाओं का आर्थिक का विवरण

परिचालन का विवरण	लागत (रु./ हैक्टर)
खेत की जुताई (डिस्क कल्टीवेटर 3 बार + रोटोवेटर)	14,500
खेत समतलीकरण, क्यारियाँ और चैनल निर्माण (80 मजदूर)	32,000
उर्वरक, एफवाइएम और जैव उर्वरक	1,08,800
कंद (1,60,000 / रु. 5)	8,00,000
कंद रोपण (50 मजदूर)	20,000
सिंचाई (9 बार)	7,200
निराई, गुड़ाई और मिट्टी चढ़ाना (60 मजदूर)	24,000
खरपतवारनाशक और कीट/रोग नियंत्रण	9,860
कटाई और पैकिंग (65 मजदूर)	26,000
मिश्रित कार्य	10,000
कुल	**10,52,305**

6-8 सप्ताह बाद उठाए जाते हैं। इन्हें हल्की सिंचाई के बाद छाया में 15-30 दिनों तक सुखाया जाता है और रोग नियंत्रण के लिए 0.2% कैप्टॉन से उपचारित किया जाता है। संग्रहण के लिए कंदों को 3-7° से. तापमान पर 3 महीने तक रखा जा सकता है। यदि निष्क्रियता को तोड़ना आवश्यक हो, तो कंदों को जीए 3 या थायोयूरिया में डुबोना लाभकारी होता है।

उत्पादन और उपज

- फूल स्पाइक: 2.0-2.5 लाख/हैक्टर
- प्रति पौधा: 1-2 स्पाइक
- कंद: 2.5-3.0 लाख/हैक्टर
- कॉर्मल: 15-20 लाख/हैक्टर

यह फसल किसानों के लिए आय-विविधीकरण और उद्यमशील खेती का

मनमोहक ग्लैडियोलस

सशक्त माध्यम बनकर उभर रही है। इसकी व्यावसायिक प्रकृति ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति देती है तथा खेती को केवल उत्पादन तक सीमित न रखकर उसे मूल्य-सृजन की पूरी श्रृंखला से जोड़ती है। रोपण सामग्री, पोषण प्रबंधन, सिंचाई संतुलन और कीट-रोग नियंत्रण जैसे पहलुओं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना इसकी सफलता की प्रमुख आधारशिला है। कटाई के बाद उचित श्रेणीकरण, पैकिंग, भंडारण तथा परिवहन का प्रबंधन उपज की गुणवत्तात्मक स्वीकार्यता को बढ़ाता है और बाजार में बेहतर विश्वसनीयता स्थापित करता है। विपणन में संगठित भागीदारी, किसान समूह, सहकारी मॉडल और डिजिटल बाजार मंच खेती को अधिक प्रतिस्पर्धी, टिकाऊ और लाभोन्मुख बनाते हैं। सही योजना, तकनीक और बाजार-रणनीति के साथ यह फसल कृषि स्वरूप को आर्थिक स्थिरता और भविष्य की नई संभावनाओं से जोड़ने की क्षमता रखती है।

'फल फूल' पत्रिका के 'जैव विविधता विशेषांक' हेतु लेख आमंत्रित

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भाकृअनुप) के 98वें स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में परिषद की लोकप्रिय द्विमासिक पत्रिका **'फल फूल'** का **'जैव विविधता विशेषांक'** प्रकाशित किया जा रहा है। इस विशेषांक के लिए कृषि वैज्ञानिकों तथा प्रगतिशील किसानों से जैव विविधता, संरक्षण, कृषि-परिस्थितिकी तथा संबंधित नवाचारों पर आधारित सफलता-गाथाएँ आमंत्रित हैं। प्रस्तुत लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा किसी नवाचार, तकनीकी हस्तांतरण, संरक्षण प्रयास या अभिनव कृषि प्रयोग की सफलता पर आधारित होना चाहिए। लेख सरल, प्रवाहपूर्ण एवं सचित्र तैयार किया जाए। लेखक-निर्देशों का पूर्ण पालन अपेक्षित है। लेख की सॉफ्ट कॉपी पोर्टल **epatrika.icar.org.in** पर 28 फरवरी 2026 तक ऑनलाइन भेजी जा सकती है।

बेर की वैज्ञानिक खेती

उत्तम शिवरान, पुष्पा उज्जैनिया, एम आर चौधरी और **कमलेश कुमार यादव**

जिजिफस मॉरिटियाना, जिसे आमतौर पर बेर कहा जाता है, शुष्क परिस्थितियों में उगने के लिए उपयुक्त फसल है। यह भारत में व्यापक रूप से पाया जाता है और इसे “गरीबों का फल” भी कहा जाता है। इसके फल विटामिन सी, ए और बी-कॉम्प्लेक्स से भरपूर होते हैं। इसकी विभिन्न किस्मों में आकार और स्वाद में भिन्नता होती है। बेर की पत्तियों में लगभग 5.6% पचने योग्य कच्चा प्रोटीन और 49.7% कुल पचने योग्य पोषक तत्व पाए जाते हैं, जिससे ये पशुओं के लिए पौष्टिक चारा भी बनती हैं। हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु प्रमुख बेर उगाने वाले राज्य हैं। बेर की वैज्ञानिक खेती उपज और गुणवत्ता बढ़ाने का आधुनिक और प्रभावी तरीका है। इसमें उन्नत किस्मों का चयन, उपयुक्त मृदा और जलवायु का ध्यान, नियमित जल प्रबंधन और संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग शामिल होता है। इससे किसान उच्च उत्पादन, बेहतर आकार और स्वाद वाले फल प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही आर्थिक लाभ भी सुनिश्चित होता है, जिससे बेर की खेती लाभकारी और टिकाऊ बनती है।

बेर का पौधा कठोर परिस्थितियों में उगने में सक्षम होता है। फल लगने के दौरान यह गर्म और शुष्क जलवायु के साथ पर्याप्त नमी पसंद करता है। अत्यधिक आर्द्रता से फसल की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है। इसकी गहरी जड़ प्रणाली, शुष्क परिस्थितियों के अनुकूल एवं अन्य विशेषताओं के कारण यह अत्यंत सूखा प्रतिरोधी है। उच्च गुणवत्ता वाले फलों के विकास के लिए वायुमंडलीय सूखापन अनुकूल रहता है, जबकि अत्यधिक आर्द्रता फल लगने में बाधा डालती है। यह पौधा 1000 मीटर तक की औसत समुद्र तल ऊँचाई पर उगाया जा सकता है।

उद्यान विभाग, श्री करण नरेंद्र कृषि महाविद्यालय, एसकेएनएयू, जोबनेर

मृदा

बेर विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में पनपने में सक्षम है, जैसे लवणता, सूखा और जलभराव। यह फसल विशेष रूप से रेतीली दोमट मृदा में अच्छा प्रदर्शन करता है। मृदा का पीएच स्तर 6.5 से 8.0 के बीच होना उपयुक्त रहता है।

सिंचाई

बेर गहरी जड़ प्रणाली वाला कठोर पौधा है, इसके परिपक्व वृक्ष को बहुत कम सिंचाई की आवश्यकता होती है। हालांकि, फल के आकार और गुणवत्ता में वृद्धि के लिए नवंबर से फरवरी के बीच सिंचाई करना लाभकारी होता है। फूल आने और फल बनने के समय पर्याप्त पानी देना आवश्यक है, क्योंकि इस चरण में पानी की कमी से फल छोटे रह सकते हैं और गिरने की आशंका बढ़ जाती है। इस दौरान 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना उचित है। तुड़ाई से लगभग 20 दिन पहले सिंचाई बंद कर देनी चाहिए, ताकि फलों में मिठास बढ़े और उनका स्वाद बेहतर हो।

प्रमुख किस्में

बेर की प्रमुख किस्मों में उमरान, गोला, कैथली, बनारसी, थार सेविका, थार भुभराज और थार माल्टी शामिल हैं। इन किस्मों का चयन करते समय किसानों को अपने क्षेत्र की जलवायु, मृदा की स्थिति और बाजार की मांग को ध्यान में रखना चाहिए, ताकि बेहतर उपज और गुणवत्ता प्राप्त की जा सके।

बेर की गोला किस्म

प्रवर्धन

बेर का वानस्पतिक प्रवर्धन मुख्य रूप से आई या टी (शील्ड) बडिंग विधि द्वारा किया जाता है।

रोपण

बेर के रोपण के लिए वर्षा आधारित क्षेत्रों में पौधों के बीच 6 × 6 मीटर और सिंचित क्षेत्रों में 8 × 8 मीटर की दूरी उचित रहती है। साथ ही 60 × 60 × 60 सें.मी. आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं, जिन्हें 50 किलोग्राम गोबर खाद और मृदा के साथ एल्ड्रिन, बीएचसी या मिथाइल पेराथियॉन पाउडर से भरा जाता है। रोपण का उपयुक्त समय जून से अगस्त के बीच होता है।

उर्वरक और खाद

बेर की अच्छी पैदावार के लिए जैविक खाद और रासायनिक उर्वरकों का संतुलित

पुष्पण और परागण

बेर के फूल छोटे, पीले-हरे रंग के होते हैं और इनका आकार लगभग 2-5 मि.मी. होता है। ये फूल गुच्छों में उगते हैं, जिन्हें सायम कहा जाता है। बेर के पेड़ में फूल मुख्य रूप से मानसून के बाद आते हैं, जब पर्याप्त नमी उपलब्ध होती है। आमतौर पर पौधों में सितंबर से नवंबर के बीच फूल लगते हैं। परागण मुख्य रूप से मधुमक्खियों और अन्य कीटों द्वारा होता है, और यह प्रक्रिया सीधे फल उत्पादन को प्रभावित करती है। सही समय पर परागण सुनिश्चित करने के लिए पर्यावरणीय कारकों और कीटों की उपस्थिति पर ध्यान देना आवश्यक है। परागण को बढ़ावा देने के लिए उचित प्रबंधन तकनीकों का उपयोग फलों की उपज और गुणवत्ता सुधारने में मदद करता है।

पौधे में पुष्पण अवस्था

उपयोग आवश्यक है। प्रति पौधा प्रति वर्ष लगभग 50-60 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस और 250 ग्राम पोटाश देना चाहिए। पौधे की आयु और उपज के अनुसार इनकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

विशेष देखभाल, स्वस्थ उपज

छंटाई

बेर के पौधों में छंटाई का सबसे उपयुक्त समय फलों की तुड़ाई के बाद होता है, जो आमतौर पर अप्रैल से मई के बीच पड़ता है। इस दौरान पौधा निष्क्रिय अवस्था में होता है और नए मौसम में सक्रिय वृद्धि के लिए तैयार रहता है।

छंटाई उपरांत देखभाल

छंटाई के बाद बेर के पौधों को उचित पोषण और देखभाल की आवश्यकता होती है। इस समय अच्छी गुणवत्ता वाली खाद और उर्वरक देना जरूरी है ताकि नई शाखाएँ स्वस्थ रूप से विकसित हों। पर्याप्त सिंचाई भी आवश्यक है, और इसके लिए बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली का उपयोग अधिक लाभकारी साबित होता है। इसके साथ ही कटे हुए हिस्सों पर फफूंदनाशक का छिड़काव करना चाहिए, ताकि संक्रमण और रोगों की आशंका को कम किया जा सके।

छंटाई उपरांत बेर वृक्ष

रोग और कीट प्रबंधन

बेर की खेती में रोग और कीट प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रमुख रोगों में पत्ती झुलसा, फल गलन और जड़ गलन शामिल हैं। वहीं, कीटों में फल मक्खी, तना छेदक और मिलीबग प्रमुख रूप से नुकसान पहुंचाते हैं। इनसे बचाव के लिए जैविक कीटनाशकों और फफूंदनाशकों का संतुलित उपयोग किया जा सकता है। इसके साथ ही खेत की नियमित निगरानी और पौधों की देखभाल करके इन रोगों और कीटों की रोकथाम प्रभावी रूप से संभव है।

रोग एवं कीट का प्रभावी नियंत्रण

तुड़ाई और उपज

बेर के फल सामान्यत: फरवरी से मार्च के बीच पकते हैं। फल पकने के बाद उन्हें सावधानीपूर्वक तोड़ा जाता है ताकि फलों को कोई नुकसान न पहुंचे। एक पौधा 80-200 किलोग्राम तक फल दे सकता है। अच्छी किस्मों की खेती करने पर प्रति हैक्टर 10-15 टन तक उपज प्राप्त की जा सकती है। ■

आजीविका

मशरूम की खेती से ग्रामीण युवाओं का सशक्तिकरण

रूप सिंह[1], **इरफान खान**[2] और **अरविन्द नागर**[1]

मशरूम एक विशेष प्रकार का फफूंद है, जिसमें पौधों की तरह क्लोरोफिल नहीं होता, इसलिए इसकी खेती बंद कमरे या झोपड़ी में आसानी से की जा सकती है। बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि जोतों में कमी आई है, ऐसे में मशरूम की खेती आय का एक बेहतर विकल्प बनकर उभरी है। यह घर के अंदर करने योग्य एक लघु व्यवसाय है, जिसके लिए खेत की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए छोटे एवं भूमिहीन किसानों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। मशरूम को कृषि अवशेषों पर उगाया जाता है, जिससे अपशिष्टों का उपयोग भी हो जाता है। उत्पादन के बाद अपशिष्ट पदार्थ को जैविक कम्पोस्ट के रूप में खेतों में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार मशरूम उत्पादन ग्रामीणों के लिए आजीविका का सशक्त माध्यम बन सकता है।

मशरूम की खेती अपनाकर बेरोजगारी और पोषण की कमी जैसी दोहरी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। भारत में मुख्यत: चार प्रकार के मशरूम-बटन, ढिंगरी, दूधिया (मिल्की) और धान पुआल मशरूम की खेती की जाती है। देश की विविध जलवायु और ऋतुएँ इन विभिन्न प्रकारों की खेती के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं। पौष्टिकता और औषधीय गुणों के कारण मशरूम की माँग निरंतर बढ़ रही है। यही कारण है कि आज किसान और युवा वर्ग मशरूम उत्पादन को एक लाभकारी और टिकाऊ व्यवसाय के रूप में तेजी से अपना रहे हैं।

[1]कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान); [2]कृषि विज्ञान केंद्र, चौमूं, जयपुर (राजस्थान)

मशरूम उत्पादन तकनीक

- ढिंगरी मशरूम को मुख्यत: गेहूं के भूसे या धान की पुआल पर उगाया जाता है। इसका फसल चक्र 45-60 दिनों का होता है और इसकी खेती कम लागत में किसी खाली कमरे या झोपड़ी में की जा सकती है। गेहूं के भूसे को रातभर भिगोकर उपचारित किया जाता है, फिर उसमें मशरूम का बीज मिलाकर थैलियों में भरकर रख दिया जाता है।
- 15-20 दिनों बाद कवक जाल फैलने पर पानी का छिड़काव किया जाता है, जिसके 5-10 दिनों बाद उत्पादन शुरू हो जाता है। इसके लिए 22-28°C तापमान और 80-90% आर्द्रता आवश्यक है। 10-12 कि.ग्रा. सूखे भूसे से 8-10 कि.ग्रा. मशरूम प्राप्त होता है। इसका बाजार मूल्य लगभग ₹100-150 प्रति कि.ग्रा. है। 2000 वर्ग फीट क्षेत्र में किसान प्रति माह ₹10,000-20,000 तक कमा सकते हैं।
- भारत में बटन मशरूम की खेती मौसम आधारित या वातानुकूलित दोनों तरीकों से की जाती है। इसके लिए विशेष कम्पोस्ट तैयार किया जाता है। कवक फैलाव के लिए 20-25° से. और फलन के लिए 14-18° से. तापमान तथा 85-90% आर्द्रता की आवश्यकता होती है। एक क्विंटल कम्पोस्ट से लगभग 18-20 कि.ग्रा. बटन मशरूम प्राप्त होता है, जिसका बाजार मूल्य ₹150-200 प्रति कि.ग्रा. है।

मशरूम के पोषक एवं औषधीय गुण

- मशरूम एक अत्यंत पौष्टिक और औषधीय गुणों से भरपूर आहार है। इसमें 25-30 प्रतिशत उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन पाया जाता है, जिसकी पाचन क्षमता 70-90 प्रतिशत तक होती है। इसमें विटामिन C, D, राइबोफ्लेविन, थायमिन और लाइसिन जैसे आवश्यक विटामिन मौजूद रहते हैं।
- मशरूम में कोलेस्ट्रॉल नहीं होता और वसा की मात्रा बहुत कम होती है, जिससे यह हृदय रोगियों के लिए लाभदायक है। इसमें पाया जाने वाला बीटा-ग्लूकेन तत्व कैंसर रोधी गुणों वाला होता है। रेशे और क्षारीय तत्वों की अधिकता इसे कब्ज और अपच में उपयोगी बनाती है।
- मशरूम शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है तथा पोटेशियम और सोडियम की उपस्थिति रक्तचाप नियंत्रित रखने में सहायक होती है। यह कमजोर व्यक्तियों, गर्भवती महिलाओं और बच्चों के लिए भी पौष्टिक आहार है।
- सेलेनियम से भरपूर मशरूम मूत्राशय की सेहत के लिए लाभकारी है। इस प्रकार, मशरूम एक प्राकृतिक स्वास्थ्यवर्धक आहार है जो पोषण और स्वास्थ्य दोनों के लिए उपयोगी है।

आर्थिक उत्थान

मशरूम की खेती आज महिलाओं के लिए भी आत्मनिर्भरता और आर्थिक सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम बन रही है। कोटा, राजस्थान की श्रीमती रिंकू राज मीणा ने बी.एससी. (कृषि विज्ञान) और एम.बी.ए. (कृषि) की शिक्षा पूरी करने के बाद पारंपरिक नौकरी के बजाय कृषि आधारित उद्यम अपनाने का निर्णय लिया। उन्होंने मशरूम उत्पादन का प्रशिक्षण लेकर ऑयस्टर और बटन मशरूम की खेती शुरू की। उत्पादन के साथ-साथ उन्होंने मशरूम बिस्कुट, नमकीन और अचार जैसे प्रसंस्करित उत्पाद तैयार कर अपनी स्वयं की फर्म "लाइफ ग्रो किसान मशरूम फार्मिंग" की स्थापना की।

वर्तमान में रिंकू जी शंभूपुरा (जिला बूंदी) में बड़े स्तर पर मशरूम उत्पादन कर रही हैं और लगभग 15 लाख रुपये वार्षिक आय अर्जित कर रही हैं। उनके उत्कृष्ट कार्य और समर्पण को देखते हुए नाबार्ड ने उन्हें 11 लाख रुपये का ऋण स्वीकृत किया है, जिससे वे मशरूम आधारित प्रसंस्करित एवं मूल्यवर्धित उत्पादों के विस्तार पर कार्य कर रही हैं। रिंकू आज ग्रामीण महिलाओं के लिए प्रेरणा का प्रतीक बन चुकी हैं।

उद्यमिता की ओर बढ़ते कदम

मशरूम उत्पादन से उन्नति

ग्रामीण युवाओं का मशरूम की खेती के प्रति रुझान

ग्रामीण युवाओं में अब पारंपरिक खेती से हटकर नवाचार और आधुनिक तकनीकों को अपनाने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण कोटा जिले के सांगोद क्षेत्र के गाँव मंडिता के दो युवा भाई - श्री विनोद नागर (इंजीनियरिंग स्नातक) और श्री विकास नागर (कृषि स्नातक) हैं।

इन्होंने कोरोना काल (वर्ष 2020) में खेती के क्षेत्र में कुछ नया करने की सोच के साथ मशरूम उत्पादन का निर्णय लिया। प्रारंभ में 50 बैग ऑयस्टर मशरूम लगाए, लेकिन तकनीकी जानकारी और प्रबंधन के अभाव में अधिकतर बैग खराब हो गए। निराश होने के बजाय दोनों भाइयों ने कृषि विश्वविद्यालय, कोटा से तकनीकी मार्गदर्शन प्राप्त किया और वैज्ञानिक पद्धति से मशरूम उत्पादन शुरू किया।

वर्ष 2023 में उन्होंने 2000 बैग ऑयस्टर मशरूम लगाए और सालभर में तीन फसल लेकर लगभग ₹7-8 लाख का शुद्ध लाभ अर्जित किया। सफलता से प्रेरित होकर वर्ष 2024 में इन्होंने उत्पादन का स्तर बढ़ाया और एक सीजन में 3000 बैग तथा वर्षभर में 10,000 से अधिक बैग तैयार किए, जिससे उन्हें ₹10-12 लाख वार्षिक आय प्राप्त हुई।

वर्तमान में दोनों भाई ऑयस्टर मशरूम के साथ-साथ लायन्स मेन और बटन मशरूम की भी खेती कर रहे हैं तथा भविष्य में मशरूम से प्रसंस्करित और मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार करने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। उनकी यह सफलता ग्रामीण युवाओं के लिए प्रेरणादायक उदाहरण है कि सीमित संसाधनों के बावजूद नवाचार और तकनीकी मार्गदर्शन से आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकती है।

इसी प्रकार, श्री यशराज साहू, बोरखेड़ा (कोटा) ने कृषि विश्वविद्यालय, कोटा के तकनीकी मार्गदर्शन में वर्ष 2022 में 500 बैग ऑयस्टर मशरूम की खेती शुरू की और मात्र 45-60 दिनों में 80,000-85,000 रुपये का लाभ अर्जित किया। वर्तमान में वे मशरूम उत्पादन के साथ मशरूम बिस्कुट, कुकीज, पापड़ और अचार जैसे उत्पादों के प्रसंस्करण पर भी कार्य कर रहे हैं।

ऐसे युवा और महिला उद्यमी उदाहरण हैं कि वैज्ञानिक मार्गदर्शन, तकनीकी कौशल और नवाचार के साथ मशरूम खेती ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नई दिशा दे सकती है।

मशरूम की पौष्टिक गुणवत्ता एवं औषधीय महत्व की वजह से मशरूम की खेती में युवाओं व किसानों की रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। मशरूम की खेती करके किसान, ग्रामीण युवा कम लागत में अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। ■

मशरूम के प्रसंस्करित एवं मूल्यवर्धित उत्पाद

- मशरूम में नमी की मात्रा अधिक होने के कारण यह जल्दी खराब हो जाती है। इसलिए इसके संरक्षण और मूल्यवर्धन के लिए प्रसंस्करण आवश्यक है। मशरूम से कई प्रकार के उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं, जो न केवल इसकी शेल्फ लाइफ बढ़ाते हैं बल्कि किसानों और उद्यमियों को अतिरिक्त आय का अवसर भी प्रदान करते हैं।
- मशरूम से बने प्रमुख प्रसंस्करित उत्पादों में मशरूम सूप पाउडर, बिस्कुट, कुकीज, नगेट्स, पापड़, चिप्स और अचार शामिल हैं। इन उत्पादों की बाजार में अच्छी मांग रहती है, विशेष रूप से स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के बीच। प्रसंस्करण के माध्यम से मशरूम को व्यावसायिक रूप से आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिससे इसकी उपयोगिता और आर्थिक मूल्य दोनों बढ़ जाते हैं।

प्रभावी

सर्दी की सब्जियों में रोग एवं कीटों का समेकित प्रबंधन

तेजेंद्र कुमार, अनुपम और **डोली सैनी**

सर्दी के मौसम में उगाई जाने वाली सब्जियाँ-जैसे पत्तागोभी, फूलगोभी, ब्रोकली, टमाटर और मटर, भारतीय आहार का अभिन्न अंग हैं तथा पोषण सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन फसलों पर अनेक प्रकार के कीट एवं रोगों का प्रकोप होता है, जिससे उपज में 25-60% तक की हानि हो सकती है। रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण, जैविक असंतुलन, कीट प्रतिरोध तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हुआ है। अतः स्थायी उत्पादन एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (आईपीएम) की अवधारणा अत्यंत आवश्यक हो गई है। आईपीएम के अंतर्गत जैविक, फसल प्रबंधन संबंधी, यांत्रिक, भौतिक एवं रासायनिक विधियों का संतुलित उपयोग कर कीटों एवं रोगों को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखा जाता है।

भारत में सर्दियों के दौरान उगाई जाने वाली सब्जियों का क्षेत्रफल लगभग 60 लाख हैक्टर से अधिक है, जिसमें क्रूसिफेरस वर्ग (पत्तागोभी, फूलगोभी, ब्रोकली), सोलानेसी वर्ग (टमाटर) तथा लेग्युम वर्ग (मटर) की फसलें प्रमुख हैं। इन फसलों की पौष्टिकता उच्च होती है, परंतु रोग एवं कीट इनकी उत्पादकता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं।

आर.एस.एम. महाविद्यालय, धामपुर, बिजनौर-246761, उत्तर प्रदेश

पारंपरिक कीटनाशक- आधारित नियंत्रण पद्धतियाँ अल्पकालिक लाभ तो देती हैं, लेकिन दीर्घकाल में पर्यावरणीय जोखिम को बढ़ाती हैं। समेकित कीट प्रबंधन (आईपीएम) एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जो विभिन्न नियंत्रण उपायों को एकीकृत करके फसल की सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

समेकित प्रबंधन रणनीतियाँ

समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (आईपीएम) एक समग्र कृषि दृष्टिकोण है, जिसके अंतर्गत फसल उत्पादन प्रणाली के प्रत्येक चरण में कीट एवं रोगों को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रखने हेतु विभिन्न जैविक, भौतिक, यांत्रिक, सांस्कृतिक एवं रासायनिक तकनीकों का संतुलित संयोजन किया जाता है। इसके मुख्य उद्देश्य हैं - कीट व रोगों से क्षति को कम करना, पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखना, रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता घटाना और फसल की उत्पादकता व गुणवत्ता में सुधार करना आदि।

सर्दी की सब्जियों (पत्तागोभी, फूलगोभी, ब्रोकली, टमाटर और मटर) में आईपीएम को निम्न चरणों में अपनाया जा सकता है -

- **रोगमुक्त बीजः** केवल प्रमाणित, रोगमुक्त और उपचारित बीज का प्रयोग करें।
- **फसल चक्रः** एक ही वर्ग की फसलों को लगातार न बोएँ। उदाहरण के लिए गोभी की फसल के बाद पुनः ब्रोकली न लगाएँ। इससे मृदाजनित रोगों का चक्र टूटता है।
- **मृदा उपचारः** ट्राइकोडर्मा विरिडी

फसल प्रबंधन

सस्य क्रियाओं के माध्यम से फसल उत्पादन प्रणाली को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि कीट एवं रोगों की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ विकसित न हो सकें।

- **समय पर बुआईः** फसल की बुआई उचित समय पर करने से कीटों के प्रकोप से प्रभावी बचाव होता है।
- **फसल अंतरालः** पौधों के बीच उचित दूरी रखने से वायु संचार सुचारू रहता है, जिससे फफूंदजनित रोगों का दबाव कम होता है।
- **फसल अवशेष प्रबंधनः** पिछले वर्ष की फसल के अवशेषों में कीट एवं रोगजनक शेष रह जाते हैं। अतः इन्हें खेत में न छोड़ा जाए और सुरक्षित रूप से नष्ट किया जाए।
- **समुचित पोषण प्रबंधनः** संतुलित उर्वरक प्रयोग से पौधे स्वस्थ और मजबूत बनते हैं, जिससे रोग सहनशीलता बढ़ती है।
- **अंतरवर्ती फसलें :** मटर के साथ सरसों या धनिया जैसी फसलों को लगाने से कीटों का प्राकृतिक नियंत्रण होता है और फसल विविधता से पारिस्थितिक संतुलन भी बना रहता है।

सारणी: फसलों के मुख्य कीटों के लक्षण एवं प्रबंधन

फसल	प्रमुख कीट	लक्षण	प्रबंधन
पत्तागोभी / फूलगोभी	एफिड / माहूं (एफिस क्रैसिवोरा)	पत्तियाँ सिकुड़ना, पीली पड़ना तथा पौधे का अवरुद्ध विकास	पीले चिपकने वाले ट्रैप लगाएँ; नीम तेल 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
पत्तागोभी / ब्रोकली	डायमंड बैक मौथ (प्लूटेला जाइलोस्टेला)	पत्तियों में छोटे छेद बनना तथा जाल जैसी संरचना बनना	ट्राइकोग्रामा चिलोनिस का प्रयोग करें; बैसिलस थुरिन्जिएन्सिस (बी.टी.) का छिड़काव करें।
टमाटर	फल छेदक कीट / टमाटर फली छेदक (हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा)	फलों में छेद बनाकर अंदर से खाना	फेरोमोन ट्रैप लगाएँ; बैसिलस थुरिन्जिएन्सिस का छिड़काव करें।
मटर	पत्ती मोड़क / जेसिड कीट (एम्पोआस्का केरी)	पत्तियाँ मुड़ना, पीली पड़ना और पौधों का कमजोर होना	पीले ट्रैप लगाएँ; नीम तेल 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
फूलगोभी / ब्रोकली	पत्ती मोड़क / गोभी का पत्ती लपेटक (पियेरिस ब्रैसिसी)	पत्तियों पर छेद, जाल बनना तथा लार्वा दिखाई देना	जैविक कीटनाशी या बी.टी. आधारित उत्पादों का प्रयोग करें।

सारणी: फसल के मुख्य रोगों के लक्षण एवं प्रबंधन

फसल	प्रमुख रोग	लक्षण	प्रबंधन
टमाटर/ब्रोकली	डैम्पिंग ऑफ (पाइथियम, राइजोक्टोनिया)	अंकुरों का गिरना, जड़ों का गलना	ट्राइकोडर्मा विरिडी से बीज उपचार करें।
फूलगोभी	ब्लैक रॉट (जैंथोमोनास कैम्पेस्ट्रिस)	पत्तियों की नसें काली पड़ना तथा पत्तियाँ सूखना	रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें; फसल चक्र अपनाएँ।
मटर	पाउडरी मिल्ड्यू (एरिसिफे पॉलीगोनी)	पत्तियों पर सफेद पाउडर जैसी परत बनना	गंधक (सल्फर) 0.25% घोल का छिड़काव करें।
टमाटर	अर्ली ब्लाइट (अल्टरनेरिया सोलानी)	पत्तियों पर भूरे वृत्ताकार धब्बे दिखाई देना	मैंकोजेब 0.25% घोल का छिड़काव करें।
पत्तागोभी / ब्रोकली	क्लब रूट (प्लास्मोडियोफोरा ब्रैसिसी)	जड़ों में गांठ या सूजन बनना, पौधा मुरझाना	रोग प्रतिरोधी किस्में अपनाएँ; खेत में चूना डालें।

(5-10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या 2.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर) से मृदा अथवा बीज उपचार करें।

- **स्वच्छ खेत प्रबंधन:** खेत से खरपतवार, पुराने पौध अवशेष और संक्रमित भागों को निकालकर नष्ट करें।
- **जल निकास व्यवस्था:** अत्यधिक नमी रोगों को बढ़ाती है, इसलिए खेत में उचित जल निकास (ड्रेनेज) की व्यवस्था करें।

यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

यह तरीका सरल, किफायती और पर्यावरण के लिए सुरक्षित है, जिसमें कीटों को भौतिक उपायों से नियंत्रित किया जाता है। हाथ से अंडे व लार्वा हटाएँ। रस चूसक कीटों के लिए पीले चिपकने वाले ट्रैप (20-25 प्रति हैक्टर) और टमाटर फल छेदक के लिए फेरोमोन ट्रैप (10 प्रति हैक्टर) लगाएँ। नर्सरी को जाल संरचना से ढकें रात में उड़ने वाले कीटों हेतु प्रकाश ट्रैप लगाएँ और संक्रमित पौधों को नष्ट कर दें।

जैविक नियंत्रण

इस विधि में कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं - परभक्षी, परजीवी और सूक्ष्मजीवों - का उपयोग किया जाता है।

- **परजीवी कीट:** ट्राइकोग्रामा चिलोनिस 1 लाख प्रति हैक्टर की दर से 10-15 दिनों के अंतराल पर छोड़ें। यह फल छेदक कीटों के अंडों को परजीवी बनाकर नष्ट करता है।

समेकित कीट एवं रोग नियंत्रण मॉडल

- **परभक्षी कीट:** क्रायसोपरला कार्निया कीट एफिड और सफेद मक्खी को खाता है। लेडी बर्ड बीटल एफिड पर अत्यधिक प्रभावी है।
- **रोगजनक जैव नियंत्रण एजेंट:** ब्यूवेरिया बैसियाना और मेटारहिजियम एनीसोप्लिया ये कवक कीटों में संक्रमण कर उन्हें मारते हैं। ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम- मृदाजनित फफूंदजनक रोगों (जैसे राइजोक्टोनिया और पिथियम) को नियंत्रित करता है।

जैव कीटनाशी एवं पादप अर्क

ये कीटनाशी पर्यावरण के लिए सुरक्षित और अवशेष मुक्त होते हैं।

- **नीम तेल या एजाडिरेक्टिन:** 1500-3000 पीपीएम सांद्रता में 5 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।
- **बी.टी. स्प्रे:** बैसिलस थुरिन्जिएन्सिस विशेष रूप से पत्तागोभी और टमाटर के फल छेदक कीटों के विरुद्ध प्रभावी।
- **नीम की खली:** 250 किलोग्राम प्रति हैक्टर मृदा में मिलाएँ, जिससे मृदाजनित कीटों का नियंत्रण होता है।
- **लहसुन-नीम अर्क:** घरेलू जैविक विकल्प, जो रस चूसक कीटों पर प्रभावी है।

रासायनिक नियंत्रण

जब कीट या रोग की तीव्रता आर्थिक क्षति स्तर से अधिक हो जाए, तभी रासायनिक उपायों को अपनाना चाहिए। ध्यान दें - रासायनिक कीटनाशक अंतिम विकल्प के रूप में ही उपयोग करें, ताकि पर्यावरण एवं लाभकारी जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

सावधानियाँ

रासायनिक छिड़काव सुबह या शाम के समय करें, जब तापमान कम और हवा शांत हो। अंतिम छिड़काव के 10-15 दिनों बाद

सारणी: फसलों के मुख्य कीटों के लक्षण एवं प्रबंधन

फसल	कीट / रोग	अनुशंसित रसायन	मात्रा
टमाटर	फल छेदक कीट	स्पिनोसैड 45 एस.सी.	0.3 मि.ली./लीटर पानी
पत्तागोभी	एफिड (रस चूसक कीट)	इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल.	0.3 मि.ली./लीटर पानी
फूलगोभी	काला धब्बा रोग	कॉपर ऑक्सीक्लोराइड	0.3% घोल
मटर	पाउडरी मिल्ड्यू (सफेद फफूंदी)	सल्फर घुलनशील पाउडर	0.25% घोल
ब्रोकली	कटवर्म / डायमंड बैक मौथ	क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी.	2 मि.ली./लीटर पानी

ही तुड़ाई करें ताकि रासायनिक अवशेष न रहें। छिड़काव के दौरान दस्ताने, मास्क, चश्मा और एप्रन जैसे सुरक्षा उपकरण अवश्य पहनें।

निर्णय समर्थन प्रणाली

हर सप्ताह खेत का निरीक्षण करें और 10 पौधों पर कीट या रोग की स्थिति दर्ज करें। जब संक्रमण आर्थिक क्षति स्तर से ऊपर पहुँचे, तभी नियंत्रण करें। मौसम आधारित परामर्श सेवाओं से समयपूर्व चेतावनी प्राप्त कर प्रभावी प्रबंधन किया जा सकता है।

किसान प्रशिक्षण एवं जागरूकता

समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन की सफलता किसानों की सक्रिय भागीदारी और जागरूकता पर निर्भर करती है। इसके लिए किसानों को नियमित रूप से प्रशिक्षण देना आवश्यक है ताकि वे कीट एवं रोग नियंत्रण की समेकित तकनीकों को सही ढंग से अपना सकें। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन कर किसानों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए। महिला किसान समूहों को भी जैविक नियंत्रण विधियों और सुरक्षित कीटनाशक प्रयोग तकनीकों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, जिससे समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाने की प्रक्रिया अधिक प्रभावी और स्थायी बन सके।

मटर की स्वस्थ उपज

समेकित लाभ

- रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता में 40-50% तक कमी।
- उत्पादन लागत घटती है और उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखना संभव होता है।
- कीटों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना घटती है।
- फसल से अवशेष-मुक्त एवं सुरक्षित सब्जियों की प्राप्ति होती है।

सर्दी की सब्जियों में कीट एवं रोग प्रबंधन के लिए समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाना समय की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से किसान न केवल उच्च उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

यदि जैविक, सांस्कृतिक और यांत्रिक उपायों को प्राथमिकता दी जाए और केवल आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक उपाय अपनाए जाएँ, तो सतत कृषि उत्पादन एवं गुणवत्तापूर्ण सब्जियों की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सकती है।

समेकित प्रबंधन से गुणवत्तायुक्त उपज

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

संपादक

नवंबर-दिसंबर में बागों की करें विशेष देखभाल

हरे कृष्ण[1], **अरविंद कुमार सिंह**[2], **जयदीप हालदार**[1], **शुभम कुमार तिवारी**[1] और **अनूप प्रताप सिंह**[1]

भारत एक ऋतु प्रधान देश है, जिसमें हेमंत ऋतु शरद और शिशिर के बीच आती है। हिंदी पंचांग के अनुसार यह कार्तिक से मार्गशीर्ष माह के बीच होती है, जबकि ग्रेगोरियन कैलेंडर में इसका समय नवंबर से दिसंबर तक होता है। हेमंत ऋतु के आगमन के साथ ही वृक्ष पुरानी पीली पत्तियाँ गिराकर नई वृद्धि के लिए स्थान बनाते हैं। यह ऋतु परिवर्तन के संदेश की प्रतीक है, जो दर्शाती है कि "परिवर्तन प्रकृति का नियम है।" प्राकृतिक और बागवानी-दोनों दृष्टिकोणों से इसका महत्व अत्यधिक है। नवंबर और दिसंबर के दौरान महत्वपूर्ण भौगोलिक एवं ऋतुजनित परिवर्तन फलों के बागों की सेहत और उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। इस अवधि में कम तापमान, अल्प वर्षा और छोटे दिन वृक्षों के चयापचय को धीमा कर देते हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण कम होता है और शीतोष्ण फसलों जैसे सेब, नाशपाती और आडू में सुषुप्तावस्था प्रारंभ हो जाती है। यह सुषुप्तावस्था "चिलिंग आवर्स" (द्रुतशीतन अवधि) के संचय के लिए आवश्यक है, जो आगामी ऋतु में पुष्पण और फलन की गुणवत्ता सुनिश्चित करती है। इसी प्रकार अन्य बागवानी फसलों के लिए भी यह द्विमाही महत्वपूर्ण है, जिसकी चर्चा इस अंक में की जा रही है।

उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय फलों जैसे अंगूर और फालसा में इस समय पर्णपात की प्रक्रिया शुरू होती है, जिससे पौधे जल का संरक्षण करते हैं और वाष्पोत्सर्जन कम होता है। गिरी हुई पत्तियाँ मृदा की उर्वरता बढ़ाती हैं। इस ऋतु में लीची और नीबू जैसी फसलों के ऊतक शीत-कठोरीकरण से गुजरते हैं, जिससे पौधे ठंड सहने में सक्षम बनते हैं। वहीं, अनार, नीबू और अंगूर में छंटाई करने से नई वृद्धि प्रोत्साहित होती है और बगीचों में वायु परिसंचरण बेहतर होता है।

[1]भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश -221 305, [2]केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र, (केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान), वेजलपुर (गोधरा), गुजरात- 389 340

ठंडी अवधि में नीबू और अमरूद के फलों में शर्करा का संचय उनकी मिठास और गुणवत्ता को बढ़ाता है। इन कार्यिकीय और जलवायुवीय परिवर्तनों के कारण नवंबर और दिसंबर का समय बागवानी प्रबंधन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस दौरान समय पर कृषि कार्य पूरे करना भविष्य की उत्पादकता और वृक्षों की सेहत के लिए आवश्यक है।

संवेदनशील फसलों जैसे आम और केले में तनों के चारों ओर पलवार लगाने से मृदा की नमी संरक्षित रहती है और जड़ों को ठंड से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, सेब, अमरूद और नीबूवर्गीय बागानों में जैविक खाद और सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर उर्वरकों का प्रयोग मृदा स्वास्थ्य सुधारने और अगले विकास चक्र की तैयारी में सहायक होता है।

पाले से प्रभावित क्षेत्रों में नवरोपित पौधों की सुरक्षा के लिए धूम्रण, पौधों को ढकने या पाला रोधी जाल का उपयोग करना आवश्यक है, विशेषकर केले, पपीते और आम जैसे फलों के लिए। साथ ही, फलों की सुरक्षा हेतु समग्र कीट एवं रोग प्रबंधन पर भी ध्यान देना जरूरी है। इस द्विमासिक अवधि में बगीचों में किए जाने वाले प्रमुख कृषि कार्य इस प्रकार हैं।

आम

हेमंत ऋतु में आम के बागों में की जाने वाली कृषि क्रियाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं,

जिनका फलोत्पादन पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। नवंबर-दिसंबर के महीनों में आम के बागों में सिंचाई बंद कर देनी चाहिए, परंतु भूमि की आवश्यक निराई-गुड़ाई के बाद हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। वृक्षों को पाले से बचाने के लिए धुआँ करना और हल्की सिंचाई करना उपयोगी होता है। नर्सरी में पौधों को पाले से बचाने के लिए उन्हें छप्पर से ढक देना चाहिए। नए बाग के छोटे पौधों को पुआल अथवा एल्काथीन की चादरों से बने छप्परों से ढकें, परंतु पूर्व दिशा को खुला छोड़ दें ताकि पौधों को पर्याप्त प्रकाश और हवा मिल सके। दिसंबर माह में 10 वर्ष से अधिक आयु के वृक्षों में 1500 ग्रा. फॉस्फोरस तथा 1000 ग्रा. पोटाश की मात्रा प्रति वृक्ष की दर से दें। इसके साथ ही 30-40 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष की दर से अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग करें।

आम

नवंबर माह में शीर्षारंभी क्षय (डाई बैक) के लक्षण प्रायः दिखाई देते हैं। ऐसे में सबसे पहले मृत ऊतकों को स्वस्थ हरे भाग से 5-10 सें.मी. नीचे तक काटना चाहिए और फिर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3%) का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

जिन वृक्षों पर गोंदार्ति (गमोसिस) की समस्या दिखे, उनके प्रभावित भाग को खुरचकर बोर्डो लेप (कॉपर सल्फेट : बुझा चूना : पानी = 1:1:10) लगाएँ। यह ऋतु छाल खाने वाले कीट के नियंत्रण के लिए भी उपयुक्त है। कीट द्वारा बनाए गए छिद्रों में मिट्टी का तेल या पेट्रोल में भीगी रुई डालकर उन्हें गीली मिट्टी से बंद करें। शूट गॉल से प्रभावित शाखाओं को काटकर नष्ट कर दें।

फोमा ब्लाइट से बचाव के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम/लीटर) का छिड़काव करें। साथ ही समय से पहले निकलने वाले पुष्प गुच्छों को काटकर हटा दें ताकि गुच्छा रोग का प्रकोप कम किया जा सके।

अमरूद

यह द्विमाही अवधि अमरूद की फसल के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस दौरान बाग में निराई-गुड़ाई, खाद एवं उर्वरक प्रबंधन, कीट नियंत्रण, तुड़ाई और विपणन की उचित व्यवस्था करनी होती है। नवंबर-दिसंबर में पाले से बचाव के लिए पेड़ों और छोटे पौधों की विशेष सुरक्षा आवश्यक है।

छाल खाने वाले कीटों की रोकथाम हेतु उनके द्वारा बनाए गए छिद्रों की पहचान करें और उनमें मिट्टी के तेल या पेट्रोल में भीगी रुई डालकर गीली मिट्टी से बंद कर दें। पके फलों को पक्षियों से बचाने के लिए पेड़ों पर चमकीला फीता लगाएँ। इसके अतिरिक्त, पक्षियों को भगाने के लिए मानव आकार के पुतले (बिजूका) या पटाखों की आवाज का उपयोग किया जा सकता है।

तुड़ाई के समय पके फलों को सावधानीपूर्वक तोड़कर छायादार स्थान पर रखें। इसके बाद उन्हें धोकर सुखाएँ और

अमरूद की स्वस्थ पौध

भंडारण के लिए तैयार करें। फलों को आकार और किस्म के अनुसार श्रेणीबद्ध करना चाहिए ताकि बाजार में उचित मूल्य प्राप्त हो सके।

पौध तैयार करने के लिए स्टूलिंग विधि उपयोगी है। इसके अंतर्गत 2-3 वर्ष पुराने पौधों को जमीन से 4-5 इंच ऊँचाई तक काटा जाता है, जिससे अगली तिमाही में नए अंकुर निकलते हैं। नवंबर माह में बाग में निराई-गुड़ाई और सिंचाई की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। इस समय अच्छी तरह सड़ी-गली गोबर की खाद के साथ रासायनिक उर्वरक, जैसे सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश देना लाभकारी होता है। यूरिया की आधी मात्रा नवंबर में और शेष जुलाई में दी जाती है।

छह वर्ष पुराने पौधों के लिए सामान्यतः 60 किलोग्राम गोबर की खाद, 1 किलोग्राम यूरिया, 2.5 किलोग्राम SSP और 0.5 किलोग्राम क्यूरेट ऑफ पोटाश अथवा प्रति वृक्ष 75 ग्राम नाइट्रोजन, 65 ग्राम फॉस्फोरस और 50 ग्राम पोटेशियम देने की सिफारिश की जाती है। उर्वरकों की मात्रा हमेशा मृदा परीक्षण के आधार पर तय करनी चाहिए। चूँकि अमरूद की पोषक जड़ें मिट्टी की सतह से लगभग 25 सें.मी. गहराई तक पाई जाती हैं, इसलिए उर्वरक को पेड़ के तने से 1 मीटर दूर और 25 सें.मी. गहराई में डालना चाहिए ताकि इनका अधिकतम उपयोग हो सके।

लीची

नवंबर माह में प्रोह से निकलने वाले नए सांकुरों को हटा दें। यदि छाल खाने वाले कीट का प्रकोप दिखाई दे तो उसका त्वरित प्रबंधन करें। दिसंबर में 2 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति लीटर पानी में घोलकर पत्तियों पर छिड़काव करें या प्रति वृक्ष 20-25 ग्राम

कीट नियंत्रण

इस अवधि में बगीचे की जुताई कर खरपतवार निकाल दें। जुताई से मिलीबग, मिज कीट, फल मक्खी और गुजिया कीट के अंडे व प्यूपा नष्ट हो जाते हैं, जिससे इन कीटों का प्रबंधन आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त, अक्टूबर में की गई बाढ़ सिंचाई से भी मिलीबग के अंडे नष्ट होते हैं। मिलीबग कीट को वृक्षों पर चढ़ने से रोकने के लिए 30-45 सें.मी. चौड़ी 400 गेज एल्काथीन पॉलिथीन की पट्टी को तने पर जमीन से 40-60 सें.मी. ऊपर बाँधना चाहिए। पॉलिथीन बाँधने से पहले तने की छाल के सभी छिद्र व दरारें मिट्टी से बंद करें या निचले हिस्से पर ग्रीस लगाएँ, अन्यथा कीट इनसे होकर ऊपर चढ़ सकते हैं। निम्फ अवस्था के कीट पहले ही वृक्षों पर चढ़ चुके हों, तो नीम के बीज की गिरी का अर्क (5 मि.ली./लीटर) या नीम का तेल (5 मि.ली./लीटर + 1 ग्राम डिटर्जेंट पाउडर/लीटर) का छिड़काव करें। साथ ही वृक्षों के थालों में क्लोरोपाइरीफॉस दानेदार (250 ग्राम/वृक्ष) का प्रयोग करें। वैकल्पिक रूप से प्रति लीटर पानी में स्पाइरोटेट्रामैट 11.01% + इमिडाक्लोप्रिड 11.01% एससी का छिड़काव भी किया जा सकता है।

जिंक सल्फेट मिट्टी में मिलाएँ। इसके प्रयोग से मादा पुष्पों की संख्या बढ़ती है।

लीची में मिलीबग के नियंत्रण हेतु प्रति वृक्ष 250 ग्राम क्लोरोपाइरीफॉस कणिकाओं का बुरकाव एक मीटर के घेरे में करें। इसके बाद पेड़ के तने पर, जमीन से 30-40 सें. मी. ऊँचाई पर 400 गेज एल्काथीन की 30 सें.मी. चौड़ी पट्टी कसकर बाँधें और दोनों सिरों पर गीली मिट्टी या ग्रीस का लेप करें। इससे मिलीबग का प्रकोप प्रभावी ढंग से रुकता है।

नवंबर में अर्ध कुण्डलक (सेमी लूपर) कीट के प्रकोप की स्थिति में नीम आधारित रसायनों, बीटी-आधारित जैव-कीटनाशकों, अथवा डेल्टामेथ्रिन 2.5 ई.सी. (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें। दिसंबर में प्रति वृक्ष 25-30 किलोग्राम सड़ी-गली गोबर की खाद अवश्य डालें। इस द्विमाही में पुराने बागों में रासायनिक उर्वरकों व अनावश्यक सिंचाई से बचें। तना बेधक कीट की उपस्थिति में साइपरमेथ्रिन (1 मि.ली. प्रति लीटर) का छिड़काव करें तथा चिंचड़ियों से प्रभावित भागों को काटकर नष्ट करें। नए बागों में छोटे पौधों को पाले से बचाने के लिए पुआल से बने छप्परों से ढकें और हल्की सिंचाई करते रहें।

बेर

बेर

नवंबर और दिसंबर में बेर में फल-मक्खी का प्रकोप अधिक होता है, क्योंकि ये कीट विकसित हो रहे फलों में अंडे देती हैं, जिससे फलों को नुकसान पहुँचता है। इस दौरान प्रभावित फलों को इकट्ठा कर नष्ट करना आवश्यक है। रोकथाम के लिए 15 दिनों के अंतराल पर रासायनिक कीटनाशकों का छिड़काव किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्रति एकड़ 6 से 10 फेरोमोन ट्रैप लगाएं, जिन्हें 3-4 फुट की ऊँचाई पर लटकाया जाना चाहिए।

फेरोमोन ल्यूर तैयार करने के लिए 60 मि.ली. एथिल अल्कोहल, 40 मि.ली. मिथाइल यूजेनॉल और 20 मि.ली. मेलाथियॉन/डीडीवीपी का 6:4:2 अनुपात प्रयोग किया जाता है, और इन ल्यूरों को 30-40 दिनों के बाद बदलना चाहिए। तना छेदक कीट के प्रकोप की स्थिति में रूई को मोनोक्रोटोफॉस या पेट्रोल में भिगोकर कीट द्वारा बनाए गए छिद्रों में भरकर मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। इस अवधि में बेर में चूर्णिल आसिता रोग की भी आशंका रहती है, जिसे क्लेडनीय सल्फर (0.25%), केराथेन (0.05%) या टेबुकानाजोल के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

इस मौसम में फलों का विकास तेज होता है, इसलिए बाग में सिंचाई की पूरी व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए और मौसम के अनुसार हर 3-4 हफ्ते पर पानी देना चाहिए। फलों के झड़ने की समस्या को रोकने के लिए 2,4 डी (10-15 पीपीएम) या एनएए। (20-30 पीपीएम) का छिड़काव किया जाता है, जिसमें पहला छिड़काव सितंबर-अक्टूबर में फूल पूरी तरह खिल जाने के बाद और दूसरा छिड़काव एक माह बाद किया जाना चाहिए। उत्पादन और फलों के आकार में सुधार के लिए मध्य नवंबर में 1.5% पोटेशियम नाइट्रेट का छिड़काव लाभकारी रहता है, जिससे फलों की गुणवत्ता और बाजार मूल्य में सुधार होता है।

अनार

इस द्विमाही में अनार की फसल में बैक्टीरियल ब्लाइट, कवक रोग और हानिकारक कीटों से बचाव अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का 0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इसके अलावा, मैंकोजेब 75 घुलनशील चूर्ण की 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल और टीपोल या ट्विन 20 का 0.5 मि.ली. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करना भी लाभकारी है। इसके अतिरिक्त, 0.5 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण, ब्रोनोपोल 0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में और कैप्टॉन 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में छिड़काव 5-7 दिनों के अंतराल पर करने से रोग नियंत्रण में मदद मिलती है।

अनार

केला

पठार जैसे क्षेत्रों में यदि रबी ऋतु की केले की रोपाई अभी शेष हो, तो इसे इसी द्विमाही (नवंबर-दिसंबर) के भीतर पूरा कर लेना चाहिए। इस अवधि में प्रति पौधा लगभग 55 ग्राम यूरिया का प्रयोग करें और 10-10 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करते रहें। यदि पौधों में पोषक तत्वों की कमी दिखाई दे, तो 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट, 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और 0.5 प्रतिशत बोरेक्स का पर्णीय छिड़काव करना लाभकारी होता है। केला पाले के प्रति अत्यंत संवेदनशील होता है, इसलिए दिसंबर माह में विशेष सावधानी बरतें। पौधों को पाले से बचाने के लिए रात के समय बाग में धुआँ करें तथा आवश्यकता अनुसार ओवरहेड फुहारा विधि से पानी का छिड़काव करें। रोग प्रबंधन भी इस समय आवश्यक है। पर्ण चित्ती और फल सड़न जैसे रोगों की रोकथाम हेतु 1 ग्राम कार्बेण्डाजिम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

केला

साथ ही, मृदा की स्थिति, पौधों की आयु और अवस्था तथा मौसम के अनुसार सिंचाई की उचित व्यवस्था करना आवश्यक है, ताकि पौधों का विकास सुचारु रूप से हो और फसल सुरक्षित बनी रहे।

खजूर

इस द्विमाही खजूर के बागों में कोई विशेष कार्य नहीं किया जाता है। फिर भी, 15 दिनों के अंतराल पर वृक्षों की सिंचाई की जानी चाहिए। हालांकि इस दौरान खजूर में कोई प्रमुख रोग या कीट प्रकोप नहीं होता, फिर भी यदि किसी व्याधि या कीट का प्रकोप दिखाई दे, तो उसकी नियमित निगरानी करनी चाहिए ताकि समय पर उचित प्रबंधन किया जा सके।

चीकू

इस द्विमाही में दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपाइरीफॉस (2 मि.ली. प्रति लीटर जल) का छिड़काव करें। भूमि के नीचे और मुख्य शाखाओं के निचले हिस्सों से निकलने वाले अंकुरों को निकाल दें। मूलवृंत से निकलने वाली अवांछित शाखाओं को भी हटा दें। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु और अवस्था तथा मौसम के अनुसार सिंचाई करें। बाग से घास-पात हटाते रहें और सफाई का ध्यान रखें ताकि कीटों से होने वाली हानि से बचा जा सके।

लौकाट

नवंबर माह में भी लौकाट में फूल आते हैं, इसलिए इस दौरान सिंचाई नहीं करनी चाहिए। दिसंबर में फल लगने के बाद 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें ताकि फलों का समुचित विकास हो सके। पुष्पण के दौरान किसी कीटनाशक का प्रयोग न करें, क्योंकि इससे परागणकर्ता प्रभावित होंगे और फलन कम हो जाएगा। गोल्डन येलो और पेल येलो किस्मों के लिए बगीचे में कैलिफोर्निया एडवांस किस्म को परागक के रूप में लगाना चाहिए, क्योंकि इन किस्मों में स्वपरागण क्षमता नहीं होती। नवंबर में पॉलिथीन की चादरों से पलवार लगाना आवश्यक है, ताकि भूमि की नमी संरक्षित रहे।

आँवला

इस द्विमाही में आँवला की फसल के लिए दीमक से बचाव अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए क्लोरोपायरीफॉस का 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। शूट गॉल मेकर कीट से प्रभावित टहनियों को काटकर नष्ट करना चाहिए और वृक्षों पर एजाडिरेक्टिन 1000 पीपीएम तथा मैंकोजेब (2 ग्राम प्रति लीटर) का छिड़काव किया जाना चाहिए। फलों के झड़ने की समस्या होने पर 0.6% बोरेक्स का छिड़काव लाभकारी रहता है, जबकि फल गलन की समस्या होने पर ब्लाइटॉक्स (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। नवंबर से फरवरी के बीच आँवला के फलों की तुड़ाई होती है, इसलिए जिन क्षेत्रों में नवंबर-दिसंबर में तुड़ाई हो, वहाँ फलों से लदे वृक्षों को बांस की बल्ली से सहारा देना चाहिए ताकि शाखाएँ टूटने से बच सकें। इस दौरान फलों का विकास तेज होता है, अत: सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था सुनिश्चित करें, लेकिन तुड़ाई से लगभग 15 दिन पहले सिंचाई बंद कर दें ताकि फल समय पर तैयार हो सकें। तैयार फलों को तुड़ाई के बाद बाजार तक पहुँचाने की व्यवस्था भी सुनिश्चित करना आवश्यक है। शीत ऋतु में आँवले के वृक्षों में पर्णपात हो जाता है और वृक्ष सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं।

आँवला के सुषुप्त वृक्ष

कटहल

इस द्विमाही में पेड़ की पतली शाखाओं पर नर पुष्प निकलते हैं, जो कालांतर में झड़ जाते हैं। ग्राफ्टिंग के लिए नवंबर माह उपयुक्त है। चूर्णिल रोग के प्रकोप की स्थिति में सल्फर आधारित फफूंदनाशी का छिड़काव करें। मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए वृक्षों पर आम की भांति पॉलिथीन लगाएं।

सिट्रस

नवंबर-दिसंबर में कई नीबूवर्गीय फलों के फल तुड़ाई के लिए तैयार होने लगते हैं। इस दौरान फल का तुड़ाई पूर्व गिरना एक गंभीर समस्या बन जाती है। फलों के गिरने से बचाव के लिए 10 पीपीएम 2,4-डी (1 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव करना आवश्यक है।

दिसंबर में नीबूवर्गीय फलों में गोंदार्ति की आशंका बढ़ जाती है। इसे रोकने के लिए प्रभावित हिस्सों वाली छाल को खुरचकर हटा दें और फिर बोर्डो मिश्रण लेप (1:2:20) का प्रयोग खुरचे हुए भाग एवं उसके चारों ओर के स्वस्थ भाग पर करें। इसी माह में तैयार फलों को तोड़कर बाजार में भेजने की व्यवस्था सुनिश्चित करें।

आड़ू, खुबानी, आलूबुखारा

दिसंबर में नए बाग लगाने के लिए गड्ढों को भरना चाहिए। गड्ढा भरने के लिए

पपीता

पिछले माह लगाए गए पौधों की नियमित सिंचाई करें और उद्यान की सफाई कर खरपतवार निकाल दें। पौधों को पाले से बचाना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए नवंबर के अंत में पौधों को तीन ओर से पुआल से ढक दें तथा दक्षिण-पूर्व दिशा को खुला रखें, जिससे सूर्य का प्रकाश एवं हवा मिल सके। साथ ही, समय-समय पर धुआँ करना भी लाभकारी है। रोग प्रबंधन हेतु प्रभावित पौधों के गिरे हुए अवशेषों को एकत्र कर नष्ट करें और टॉप्सिन-एम (0.1 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.2-0.25 प्रतिशत) का छिड़काव करें। यह छिड़काव 15-20 दिनों के अंतराल पर दोहराना चाहिए। नवंबर के प्रथम और तीसरे सप्ताह में हल्की सिंचाई के बाद बाग में निराई-गुड़ाई करें। दिसंबर में फॉस्फोरस एवं पोटाश युक्त उर्वरकों को मिट्टी में अच्छी तरह मिलाएँ और सड़ी-गली गोबर की खाद अवश्य दें। उत्तर भारत में अप्रैल से जुलाई के बीच लगाए गए पौधे दिसंबर-जनवरी में फल तोड़ने योग्य हो जाते हैं। जब फल तोड़ते समय दूध जैसा तरल (लेटेक्स) निकलने लगे, तभी पपीते की तुड़ाई करनी चाहिए।

पपीता

अनन्नास

नवंबर-दिसंबर में फसल निर्धारण के लिए पौधों की पत्तियों में 25 पीपीएम नेप्थेलिन एसीटिक एसिड का घोल रात के समय डालें। फल तैयार होने पर समय पर तुड़ाई कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। रोग या कीट से प्रभावित भागों और पौधों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें। घास-पात हटाएं और बाग में पलवार का प्रबंधन करें, जिससे मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहे और खरपतवार नियंत्रित रहें। अक्टूबर में फसल के अवशेषों को निकालकर नष्ट कर दें। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु और अवस्था, तथा मौसम के अनुसार सिंचाई और पोषण प्रबंधन करें। पौधों की आयु के अनुसार फॉस्फोरस और पोटाश का प्रयोग करें। रोग और कीट नियंत्रण के लिए 2% नीम का तेल छिड़काव करें। रोग और कीट कम लगने वाली फसलें बाग की सीमाओं पर लगाएं।

प्रति गड्ढा 15-20 कि.ग्रा. गोबर की खाद और फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों का प्रयोग करें। इसी समय पौधों की काट-छांट का कार्य भी करें। जड़ छेदक कीट से बचाव के लिए क्लोरोपाइरीफॉस का उपयोग करें। तराई और मैदानी क्षेत्रों में आड़ू की रोपाई का कार्य दिसंबर के अंत तक समाप्त कर दें।

अंगूर

नवंबर में अंगूर के बाग की सफाई करनी चाहिए और इसे खरपतवार मुक्त रखा जाना चाहिए। हल्की सिंचाई के बाद

अंगूर

निराई-गुड़ाई अवश्य करें। दिसंबर नया उद्यान लगाने के लिए उपयुक्त महीना है। इस माह के अंतिम सप्ताह में एक वर्ष पुरानी जड़ सहित लताओं को गड्ढों में लगाकर सिंचाई करें। रोपाई के बाद पौधों को लगभग 15 सेंटीमीटर की ऊँचाई से छांटना चाहिए। दिसंबर में अंगूर की लताएं सुषुप्तावस्था में चली जाती हैं, इस दौरान लताओं से पत्तियां पीली होकर झड़ जाती हैं। इसी अवस्था में अंगूर की कटाई-छंटाई (प्रूनिंग) का कार्य किया जा सकता है।

स्ट्रॉबेरी

खेत तैयार करने से पहले प्रति हैक्टर 40-50 टन गली-सड़ी गोबर की खाद डालें और उसके बाद खेत की जुताई करें। बाग लगाने के लिए 10 × 3 × 0.5 फुट आकार की क्यारियां तैयार करें। स्ट्रॉबेरी के पौधों की रोपाई अक्टूबर के अंत या नवंबर की शुरुआत में करें। रोपाई के बाद नवंबर में पौधों में फुटाव शुरू हो जाएगा, इस दौरान बाग की निराई-गुड़ाई कर खरपतवार हटाएं। जब पौधों में 4-5 पत्तियां आ जाएं, तो नाइट्रोजन की पहली खुराक दें। दिसंबर में पत्तियों पर धब्बा रोग दिखाई देने पर डाइथेन एम-45 (2 ग्राम/लीटर पानी) या बाविस्टिन (1 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करें। बेहतर बढ़त के लिए क्यारियों पर पॉलिथीन का टेंट लगाने पर विचार करें। इसी महीने नाइट्रोजन और पोटाश की शेष खुराक देना सुनिश्चित करें। सिंचाई नियमित अंतराल पर करें और मल्चिंग के लिए पुआल, पौधों की पत्तियां या पॉलिथीन का उपयोग करें, जिससे पौधों की नमी बनी रहे और उनका विकास सही ढंग से हो।

स्ट्रॉबेरी

बेल

बेल के पौधे का घेराव (छत्रक) इच्छानुसार प्रबंधित किया जा सकता है। पौधे की शाखाओं को तब काटें जब पत्तियां गिर चुकी हों। कटाई के बाद नई शाखाएं निकलती हैं, जिससे पौधे का घेराव घना होता है और फल सूर्य की गर्मी से झुलसने से बच जाते हैं। पौधों की सधाई के लिए सुधरी प्ररोह विधि सबसे उपयुक्त है। यदि पर्ण सुरंगी और पर्ण भक्षी इल्ली का प्रकोप दिखाई दे, तो कीटनाशकों का छिड़काव दो से तीन सप्ताह के अंतराल पर एक या दो बार करना चाहिए।

बेल

इस प्रकार, इस द्विमासिक अवधि के लिए आवश्यक कृषि कार्यों का विवरण समाप्त होता है। आने वाली द्विमासिक अवधि (जनवरी-फरवरी) के लिए वसंत ऋतु में किए जाने वाले महत्वपूर्ण कृषि कार्यों की तैयारी करनी होगी। वसंत का समय फलों की खेती में विशेष महत्व रखता है, क्योंकि इस दौरान कई फल वृक्षों में सक्रिय वानस्पतिक वृद्धि, पुष्पण और परागण की प्रक्रिया होती है। अतः प्रिय पाठकों, यह सुनिश्चित करें कि आपके बाग वसंत ऋतु के स्वागत के लिए पूरी तरह तैयार हों। अपनी विश्वसनीय पत्रिका "**फल-फूल**" से जुड़े रहें और इस स्नेह को यूंही अविरल बनाए रखें। ■

सेब

नवंबर में सेब के बागों में उद्यान की सफाई और निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। दिसंबर में नए बाग लगाने के लिए गड्ढों को पहले सप्ताह तक भर देना चाहिए। निचले पहाड़ी क्षेत्रों में, जहां ठंड अधिक नहीं होती, वहां जाड़ों में रोपाई इस माह के अंत तक की जा सकती है। अच्छी फसल के लिए उद्यान में कम से कम 2-3 किस्मों का होना आवश्यक है। अधिक ठंड वाले क्षेत्रों में इसी समय पौधों की काट-छांट भी करनी चाहिए। कटे हुए भागों को चौबटिया लेप से लेपित करें, जिसे कॉपर-कार्बोनेट, रेड लेड और अलसी के तेल को 4:4:6 के अनुपात में मिलाकर तैयार किया जा सकता है। तना सड़न रोग की रोकथाम के लिए डायथेन एम-45 या बाविस्टिन के घोल का तने के चारों ओर छिड़काव करें। सेंजोस स्केल कीट से बचाव के लिए दिसंबर में पेट्रोलियम स्प्रे ऑयल या एग्रो स्प्रे ऑयल का छिड़काव करना आवश्यक है।

प्रदूषण से बचाव करे फलों का सेवन

आजकल शहरों में धुंध और धुएं के बीच सांस लेना दिन-ब-दिन मुश्किल होता जा रहा है। प्रदूषण के कारण सबसे अधिक असर हमारे फेफड़ों पर पड़ता है। ऐसे माहौल में एक साधारण सा उपाय हमें थोड़ी राहत दे सकता है-ताजे फल खाना। हाल ही में ब्रिटेन के लीसेस्टर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक बड़े अध्ययन में यह पाया कि रोजाना फल खाने वाले लोगों के फेफड़ों पर वायु प्रदूषण का असर काफी कम होता है। इस शोध में करीब दो लाख लोगों की सेहत और उनकी रोजमर्रा की डाइट से जुड़े आंकड़े देखे गए।

वैज्ञानिकों ने खासतौर पर यह समझने की कोशिश की कि क्या फल, सब्जियाँ और साबुत अनाज जैसी चीजें वायु प्रदूषण के कारण होने वाले नुकसान को कम कर सकती हैं। अध्ययन के नतीजे चौंकाने वाले थे। जिन लोगों ने दिन में चार या उससे अधिक बार फल खाए, उनके फेफड़ों की कार्यक्षमता में बहुत कम गिरावट देखी गई। जबकि कम फल खाने वालों में यह गिरावट ज्यादा रही। आँकड़ों के अनुसार कम फल खाने वालों के फेफड़े औसतन 78.1 मिलीलीटर कमजोर हुए, जबकि ज्यादा फल खाने वालों में यह कमी केवल 57.5 मिलीलीटर रही। यानी लगभग 20 मिलीलीटर का फर्क।

स्वास्थ्य के लिहाज से यह छोटा अंतर भी बेहद महत्वपूर्ण है, खासकर तब जब कोई लगातार प्रदूषित हवा में सांस ले रहा हो। अब सवाल यह है कि आखिर फल इतने कारगर क्यों हैं। दरअसल, फलों में भरपूर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं। जब हम प्रदूषित हवा में सांस लेते हैं तो शरीर में सूजन और ऑक्सीडेटिव तनाव बढ़ जाता है। यही तनाव धीरे-धीरे फेफड़ों को नुकसान पहुंचाता है। एंटीऑक्सीडेंट्स इन हानिकारक प्रभावों से लड़ते हैं और कोशिकाओं को सुरक्षित रखते हैं।

इस प्रकार फल हमारी शारीरिक रक्षा प्रणाली को मजबूत बनाते हैं। हालाँकि, शोधकर्ताओं का यह भी कहना है कि केवल फल खा लेने से प्रदूषण की समस्या का हल नहीं होगा। असली समाधान तभी मिलेगा जब प्रदूषण को जड़ से कम करने के लिए ठोस कदम उठाए जाएँ। इसके लिए सरकारों को कड़े पर्यावरणीय कानून बनाने और उन्हें सख्ती से लागू करने की जरूरत है। संक्षेप में कहा जाए तो फल न सिर्फ पोषण और सेहत का खजाना हैं, बल्कि प्रदूषण के असर को कम करने में भी सहायक हैं। इसलिए हमारी थाली में जितने ज्यादा रंग-बिरंगे फल होंगे, उतना ही हमारा शरीर प्रदूषण से बचाव कर पाएगा। ■

वन की आग से बढ़ रहा जल प्रदूषण

जंगलों में लगी आग केवल वातावरण और वन्यजीवों को ही नुकसान नहीं पहुँचाती, बल्कि इसका असर जल स्रोतों पर भी लंबे समय तक दिखाई देता है। हाल ही में नेचर कम्युनिकेशंस अर्थ एंड एनवायरनमेंट पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन में पाया गया कि जंगल की आग के बाद नदियों और झीलों का पानी 8 वर्षों तक प्रदूषित रह सकता है। अमेरिका के पश्चिमी हिस्से में किए गए इस शोध में वैज्ञानिकों ने 500 नदियों और झीलों से एक लाख से अधिक नमूने लिए। इनमें आग के 1-5 वर्षों तक पानी में ऑर्गेनिक कार्बन, फॉस्फोरस और अपशिष्ट की मात्रा सामान्य से कहीं अधिक पाई गई। नाइट्रोजन और मिट्टी के कण 8 वर्षों तक बढ़े हुए स्तर पर बने रहे। वहीं घने जंगलों वाले क्षेत्रों में इसका प्रभाव और ज्यादा था। बारिश के दौरान जली हुई राख और मिट्टी बहकर नदियों/झीलों में पहुँच जाती है, जिससे प्रदूषण और बढ़ जाता है। यदि आग जल स्रोतों के आसपास लगती है, तो पानी की गुणवत्ता पर उसका असर कई गुना बढ़ जाता है।

भारत में स्थिति

भारत में भी जंगलों की आग एक गंभीर समस्या है। फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया के अनुसार, हर साल 30,000 से अधिक घटनाएँ दर्ज होती हैं। सबसे अधिक मामले हिमालयी क्षेत्र, मध्य और दक्षिण भारत में सामने आते हैं।

हिमालयी क्षेत्रों में आग को नियंत्रित करना और कठिन है। यहाँ ढलानदार भूगोल और कठिन भौगोलिक परिस्थितियाँ आग को तेजी से फैलाती हैं। देवदार और चीड़ जैसे वृक्षों की रेजिन एवं पत्तियाँ आसानी से जल जाती हैं। कम वर्षा और लगातार सूखे हालात आग की आशंका को और बढ़ा रहे हैं।

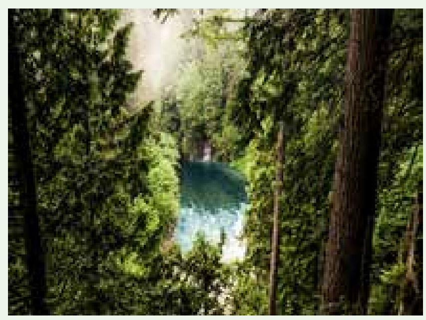

जंगलों की आग से जल स्रोतों का प्रदूषण सिंचाई की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। इससे न केवल फसलों की सेहत और मृदा की उर्वराशक्ति पर असर पड़ता है, बल्कि किसान की आय पर भी सीधा संकट बनता है। जंगलों की आग अब केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं रही, बल्कि यह जल सुरक्षा और कृषि उत्पादन पर भी गहरा प्रभाव डाल रही है। सामुदायिक स्तर पर जागरूकता, वन विभाग की सतर्कता और समय रहते उठाए गए कदम ही जल स्रोतों और खेती को सुरक्षित रख सकते हैं। ■

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 77 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा **'कृषि खबरें, देश विदेश की'** जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्यः

एक प्रति : 50 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपये

संपर्क सूत्रः

प्रभारी, व्यवसाय एकक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष : 011–25843657, ईमेल : businessuniticar@gmail.com

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स विबा प्रेस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110 020 से मुद्रित। संपादकः सुनीता अरोड़ा